वेद

विश्व में प्रथम बार वेद ऑन लाईन

APRIL 29, 2016 LEAVE A COMMENT

विश्व में प्रथम बार
वेद ऑन लाईन

आज विज्ञान का युग है, विज्ञान ने प्रगति भी बहुत की हैं, इस प्रगति में तन्त्रजाल (इन्टरनेट) ने लोगों की जीवन शैली को बदल-सा दिया है। विश्व के किसी देश, किसी भाषा, किसी वस्तु, किसी जीव आदि की किसी भी जानकारी को प्राप्त करना, इस तन्त्रजाल ने बहुत ही सरल कर दिया है। विश्व के बड़े-बड़े पुस्तकालय नेट पर प्राप्त हो जाते हैं। अनुपलबध-सी लगने वाली पुस्तकें नेट पर खोजने से मिल जाती हैं।

आर्य जगत् ने भी इस तन्त्रजाल का लाभ उठाया है, आर्य समाज की आज अनेक वेबसाइटें हैं। इसी शृंखला में 'आर्य मन्तव्य' ने वेद के लिए एक बहुत बड़ा काम किया है। 'आर्य मन्तव्य' ने वेद को सर्वसुलभ करने के लिए onlineved.com नाम से वेबसाइट बनाई है। इसकी निमनलिखित विशेषताएँ हैं-

1. विश्व में प्रथम बार वेदों को ऑनलाईन किया गया है, जिसको कोई भी इन्टरनेट चलाने वाला पढ़ सकता है। पढ़ने के लिए पी.डी.एफ. किसी भी फाईल को डाउनलोड करने की आवश्यकता नहीं है।

2. इस साईट पर चारों वेद मूल मन्त्रों के साथ-साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती, आचार्य वैद्यनाथ, पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार व देवचन्द जी आदि के भाष्य सहित उपलबध हैं।

3. इस साईट पर हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी तथा मराठी भाषाओं के भाष्य उपलबध हैं। अन्य भाषाओं में भाष्य उपलबध कराने के लिए काम चल रहा है, अर्थात् अन्य भाषाओं में भी वेद भाष्य शीघ्र देखने को मिलेंगे।

4. यह विश्व का प्रथम सर्च इंजन है, जहाँ पर वेदों के किसी भी मन्त्र अथवा भाष्य का कोई एक शबद भी सर्च कर सकते हैं। सर्च करते ही वह शबद वेदों में कितनी बार आया है, उसका आपके सामने स्पष्ट विवेचन उपस्थित हो जायेगा।

5. इस साईट का सर्वाधिक उपयोग उन शोधार्थियों के लिए हो सकता है, जो वेद व वैदिक वाङ्मय में शोधकार्य कर रहे हैं। उदाहरण के लिए किसी शोधार्थी का शोध विषय है 'वेद में जीव', तब वह शोधार्थी इस साईट पर जाकर 'जीव' लिखकर सर्च करते ही जहाँ-जहाँ जीव शबद आता है, वह-वह सामने आ जायेगा। इस प्रकार अधिक परिश्रम न करके शीघ्र ही अधिक लाभ प्राप्त हो सकेगा।

6. इस साईट का उपयोग विधर्मियों के उत्तर देने में भी किया जा सकता है। जैसे अभी कुछ दिन पहले एक विवाद चला था कि 'वेदों में गोमांस का विधान है' ऐसे में कोई भी जनसामान्य व्यक्ति इस साईट पर जाकर 'गो' अथवा 'गाय' शबद लिखकर सर्च करें तो जहाँ-जहाँ वेद में गाय के विषय में कहा गया है, वह-वह शीघ्र ही सामने आ जायेगा और ज्ञात हो जायेगा कि वेद गो मांस अथवा किसी भी मांस को खाने का विधान नहीं करता।

7. विधर्मी कई बार विभिन्न वेद मन्त्रों के प्रमाण देकर कहते हैं कि अमुक मन्त्र में ये कहा है, वह कहा है या नहीं कहा। इसकी पुष्टि भी इस साईट के द्वारा हो सकती है, आप जिस वेद

का जो मन्त्र देखना चाहते हैं, वह मन्त्र इस साईट के माध्यम से देख सकते हैं। इस प्रकार अनेक विशेषताओं से युक्त यह साईट है। इस साईट को बनाने वाला ‘आर्य मन्तव्य’ समूह धन्यवाद का पात्र है। वेद प्रेमी इस साईट का उचित लाभ उठाएँगे, इस आशा के साथ।

– आचार्य सोमदेव, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

अथर्व – 6.26. -सूक्त-विष्णु देवता के मन्त्रों का वैज्ञानिक विवेचन

FEBRUARY 29, 2016 LEAVE A COMMENT

अथर्व – **6.26.** -सूक्त-विष्णु देवता के मन्त्रों का वैज्ञानिक विवेचन

– आर.बी.एल. गुप्ता एवं डॉ. पुष्पागुप्ता

श्री आर.बी.एल. गुप्ता बैंक में अधिकारी रहे हैं। आपकी धर्मपत्नी डॉ. पुष्पागुप्ता अजमेर के राजकीय महाविद्यालय संस्कृत विभाग की अध्यक्ष रहीं हैं। उन्हीं की प्रेरणा और सहयोग से आपकी वैदिक साहित्य में रुचि हुई, आपने पूरा समय और परिश्रम वैदिक साहित्य के अध्ययन में लगा दिया, परिणाम स्वरूप आज वैदिक साहित्य के सबन्ध में आप अधिकार पूर्वक अपने विचार रखते हैं।

आपकी इच्छा रहती है कि वैज्ञानिकों और विज्ञान में रुचि रखने वालों से इस विषय में वार्तालाप हो। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर इसवर्ष वेद गोष्ठी में एक सत्र वेद और विज्ञान के सबन्ध में रखा है। इस सत्र में विज्ञान में रुचि रखने वालों के साथ गुप्तजी अपने विचारों को बाँटेंगे। आशा है परोपकारी के पाठकों के लिए यह प्रयास प्रेरणादायी होगा।

-सपादक

इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में विष्णु के वीर्य कर्मों को बताया गया है। विष्णु गुरुत्वाकर्षण शक्ति के अधिष्ठाता देव हैं। वेद के जिन मन्त्रों में अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों में जहाँ पर भी विट्,विशः, विष्णु शबद आते हैं- वहाँ पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति से सबन्धित व्याखयान हैं- ऐसा निश्चित रूप से समझ लेना चाहिये। विष्णु का प्रथम वीर्य कर्म है-पार्थिव रजों को नापना अर्थात पिण्ड की मात्रा के अनुसार गुरुत्वाकर्षण शक्ति का होना। दूसरा वीर्य कर्म है- उत्तर सधस्थ (उत्तम स्थान पर स्थित पिण्ड) को त्रेधा विचक्रमण (तीन प्रकार से धारित शक्ति से पिण्ड को चक्रित करना) तथा उरुगमन (एक बिन्दु से विस्तृत होते हुए जाना) प्रक्रियाओं से स्कंभित करना।

पार्थिव रज का तात्पर्य है– गुरुत्वाकर्षण (g) ऋ. 1.35.4 में कृष्णा रजांसि पद, ऋ. 1.35.9 में कृष्णेन रजसा पद, ऋ. 1.12.5 में अन्तरिक्षे रजसो-विमानः इन मन्त्रों में-कृष्णरज-पार्थिवरज-शबदों में वैज्ञानिक अर्थ है- g (गुरुत्वाकर्षण)। कोई भी भौतिक कण चाहे कितना भी हल्का क्यों न हो, जब तक एक निश्चित आकृति (volume) एवं निश्चित मात्रा (m) का बनकर एक निश्चित कण का रूप ले लेता है, तब उसमें एक निश्चित घनत्व एवं निश्चित गुरुत्वाकर्षण (g) आ जाता हैं। एक निश्चित आकृति के कण को वेदमन्त्रों में मृग कहा गया हैं। ऋ. 1.154.2

(अथर्व 7.26.2) में-मृगःनभीमःकुचरःगिरिष्ठा पद में गिरि में स्थित कुत्सित गति वाला भयानक मृग- यह अर्थ एक निश्चित मात्रा में आये कण जिसमें गुरुत्वशक्ति आ गई है- के लिये कहा गया हैं।

त्रेधा विचक्रमण क्या है ? हमारी पृथ्वी एवं सूर्य का उदाहरण-

पृथ्वी अपनी धुरी (axis) पर एक अहोरात्रि में पूरी घूम जाती है, तथा साथ ही लगभग 25000 कि.मी. दूरी सूर्य की परिक्रमा करती हुई आगे बढ़ती है। यहाँ पृथ्वी में दो प्रकार की गति (चक्रमण) है- (1.) अपनी धुरी पर घूमना (2.) सूर्य के परिक्रमा पथ पर घूमते हुये ही आगे बढ़ना।

सूर्य पृथ्वी से कई लाख गुणा आकार में अधिक है, तथा 15 करोड़ किलो मीटर दूरी पर है, फिर भी सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति घूमती हुई पृथ्वी को सतत अपनी ओर आकर्षित करती है। सूर्य की इस शक्ति को निःशेष करने के लिये पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है तथा परिक्रमा पथ पर आगे बढ़ती है। इस प्रकार पृथ्वी का जो विचक्रमण हो रहा है, उसका कारण यह तीन प्रकार से पृथ्वी पर धारित शक्तियों के कारण हैं। यदि ऐसा न हो तो पृथ्वी सूर्य में गिरकर सूर्य में समा जायेगी। ऐसी स्थिति प्रलय अवस्था में अवश्य आयेगी।

उरुगमन– जंघाओं को फैलाकर जब हम खड़े होते हैं- जब जंघाओं की स्थिति इस प्रकार की होती है, इसे विज्ञान की भाषा में उरुगमन कहते हैं (divertion of rays)। गुरुत्व शक्ति की किरणें इसी नियम का पालन करती हैं।

विष्णु का 3 पदों में विचक्रमण क्या है?

ऋ. 1.164.2 में त्रिनाभि चक्रं अजरं अनर्वं पद आया है। वेद मन्त्रों में आया त्रिनाभि चक्र- अण्डाकार आकृति को बताता है- जिसमें तीन केन्द्रबिन्दु (नाभियाँ) होती हैं। पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा का मार्ग भी अण्डाकार है। इस अण्डाकार मार्ग का मूल सिद्धान्त है- केन्द्र में बड़ा पिण्ड जैसे सूर्य उसके दोनों तरफ दो और केन्द्र बिन्दु A व B होते हैं। पृथ्वी (E) इस प्रकार घूमती है कि पृथ्वी का इन दोनों बिन्दुओं A व B से दूरी का योग हमेशा समान अर्थात् दूरी AE + BE का योग हमेशा समान रहेगा तथा इस प्रकार पृथ्वी का परिभ्रमण मार्ग अण्डाकार बन जाता है।

यही उदाहरण सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करनेवाले अन्य ग्रह-बुध, शुक्र, मंगल, ब्रहस्पति, शनि आदि में भी दिया जा सकता है। यही नहीं, अति सूक्ष्म परमाणु में भी प्रोटोन एवं इलेक्ट्रोन भी इसी त्रिनाभि चक्रं-त्रेधा विक्रमण आदि नियमों का पालन करते हैं।

इन्द्रस्य युज्यसखाः – इस सूक्त के मन्त्र संखया 6 में यह पद आया है। इन्द्र दिव्य रजः (emt) का अधिष्ठाता देव है, तथा विष्णु पार्थिव रजः (g) का। परमाणु के अन्दर प्रोटोन का उदाहरण- प्रोटोन के दो भाग हैं- (1.) पार्थिव भाग (matter) तथा (2.) दिव्य भाग (e.m.t)। इसी प्रकार इलेक्ट्रॉन भी है, पर उसमें विद्युत शक्ति – है जबकि प्रोटोन में + है। प्रोटोन तथा इलेक्ट्रोन के मध्य भी दो प्रकार की आकर्षण शक्ति (1) विद्युत शक्ति का आकर्षण (इन्द्र की शक्ति) एवं (2) गुरुत्वाकर्षण शक्ति (विष्णु की शक्ति)। अतःमन्त्र 6 में कहा है कि विष्णु के कर्मों को देखो

जहाँ वह व्रतों को स्पर्श करता है तथा इन्द्र का योजित सखा है। प्रोटोन तथा इलेक्ट्रोन दोनों परामाणु के अन्दर अपने-अपने व्रत्तों में घूमते हैं- एक-दूसरे के व्रत्त (orbit) को स्पर्श करते हुए।

मन्त्र 7 में सूर्यःविष्णु के परम् पद को सदा देखते हैं। यहाँ परम पद से तात्पर्य है गुरुत्व शक्ति का केन्द्र बिन्दु (center of gravity)

मन्त्र 4 में समूढं अस्य पांसुरे।पांसुरे शबद (collective) अर्थ में है। छोटा पिण्ड हो या बड़ा, मात्रा अधिक या कम होने से पूरे पिण्डकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति कम या अधिक हो जायेगी, परन्तु समूह रूप में पूरे पिण्ड की गुरुत्वाकर्षण शक्ति केन्द्र बिन्दु (पांसुरे पद) में गुप्त रूप से निहित हो जाती है।

वेदो का विज्ञानं मानवमात्र के लिए

JULY 28, 2015 1 COMMENT

।। ओ३म ।।

अयं त इध्म आत्मा जातवेदः।

“हे अग्ने ! तेरे लिए सबसे पहला ईंधन “अयं आत्मा” – अर्थात यह यजमान – स्वयं है।”

वेदो का विज्ञानं मानवमात्र के लिए :

क्षयरोग (TB – Tuberculosis) से बचाव और उपचार करता है यज्ञ।

सूर्य का प्रकाश मनुष्य के लिए वैसे भी लाभदायक है। इससे शरीर में विटामिन डी बनता है, जिससे हड्डियां पुष्ट होती हैं। उदय और अस्त होने वाले सूर्य की किरणे तो और भी अधिक गुणकारी होती हैं।

उद्यन्नादित्यः क्रिमिहन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयो गवि।।

(अथर्ववेद २।३२।१)

“उदय होता हुआ और अस्त होने वाला सूर्य अपनी किरणों से भूमि और शरीर में रहने वाले रोगजनक कीटो का नाश करता है।”

सूर्य का प्रकाश कृमिनाशक है। रोबर्ट काउच ने सन १८९० में अनेको प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध किया की क्षयरोग (फेफड़ो के क्षयरोग को छोड़कर) के कीटाणु इस प्रकाश में दस मिनट से अधिक समय तक जीवित जीवित नहीं रह सकते। इसलिए क्षयरोग से ग्रस्त व्यक्ति को धुप सेकनी चाहिए।

संभवतः जनसाधारण में इसको यह कहकर मान्यता प्रदान की जाती है की अँधेरे में क्षयरोग फूलता फलता है तथा प्रकाश में यह दम दबाकर भाग जाता है।

अतः यज्ञ के लिए सूर्योदय के पश्चात तथा सूर्यास्त से पूर्व का समय ही ठीक है।

आधुनिक विज्ञानं के अनुसार सूर्य की धुप क्षयरोग के लिए बचाव और उपचार दोनों है

http://www.dailymail.co.uk/…/Sunshine-vitamin-helps-treat-p…

अब इस समय पर यज्ञ करना लाभदायक ही होगा क्योंकि यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली सामग्री में मुख्य रूप से गौघृत, खांड अथवा शक्कर, मुनक्का, किशमिश आदि सूखे फल जिनमे शक्कर अधिक होती है, चावल, केसर और कपूर आदि के संतुलित मिश्रण से बनी होती है।

अब इस विषय पर कुछ वैज्ञानिको के विचार :

१. फ्रांस के विज्ञानवेत्ता ट्रिलवर्ट कहते हैं : जलती हुई शक्कर में वायु – शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति होती है। इससे क्षय, चेचक, हैजा आदि रोग तुरंत नष्ट हो जाते हैं।

२. डॉक्टर एम टैल्ट्र ने मुनक्का, किशमिश आदि सूखे फलो को जलाकर देखा है। वे इस निर्णय पर पहुंचे हैं की इनके धुंए में टायफाइड ज्वर के रोगकीट केवल तीस मिनट तथा दूसरी व्याधियों के रोगाणु घंटे – दो घंटे में मर जाते हैं।

३. प्लेग के दिनों में अब भी गंधक जलाई जाती है, क्योंकि इसमें रोगकीट नष्ट होते हैं। अंग्रेजी शासनकाल में डाकटर करनल किंग, आई एम एस, मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर थे। उनके समय में वहां प्लेग फ़ैल गया। तब १५ मार्च १८९८ को मद्रास विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के समक्ष भाषण देते हुए उन्होंने कहा था – "घी और चावल में केसर मिलकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है।" इस भाषण का सार श्री हैफकिन ने "ब्यूबॉनिक प्लेग" नामक पुस्तक मे देते हुए लिखा है, "हवन करना लाभदायक और बुद्धिमत्ता की बात है।"

महर्षि दयानंद ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है :

"जब तक इस होम करने का प्रचार रहा ये तब तक ये आर्यवर्त देश रोगो से रहित और सुखो से पूरित था अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए।"

(स. प्र. तृतीय समुल्लास)

यहाँ ऋषि इसी विज्ञानं को समझाने की कोशिश कर रहे हैं जो आज का आधुनिक विज्ञानं मानता है।

कृपया यज्ञ करे – राष्ट्र और पर्यावण को सुखी बनाये

आओ लौटो वेदो की और।

नमस्ते

नोट : इस पोस्ट की कुछ सामग्री "यज्ञ विमर्श" पुस्तक से उद्धृत है।

कवि और कबीर का भेद – रामपाल के पाखंड का खंडन।

JULY 28, 2015 4 COMMENTS

।। ओ३म ।।

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा।
हव्यवावाड्जुह्वास्यः।।

(ऋग्वेद 1.12.6)

प्रथमाश्रम में अपने में ज्ञान को समिद्ध करते हुए हम द्वितीयाश्रम में उत्तम गृहपति बने। वानप्रस्थ बनकर यज्ञो का वहन करते हुए तुरियाश्रम में ज्ञान का प्रसार करने वाले बने।

नमस्ते मित्रो – आज का विषय

कवि और कबीर का भेद – रामपाल के पाखंड का खंडन।

वेदो में प्रयुक्त कवि शब्द एक अलंकार है – किसी प्राणी का नाम नहीं, क्योंकि विद्याओ के सूक्ष्म तत्वों के दृष्टा, को कवि कहते हैं – इस कारण ये अलंकार ऋषियों के लिए भी प्रयुक्त होता है और समस्त विद्या (वेदो का ज्ञान) देने वाला ईश्वर भी अलंकार रूप से कवि नाम पुकारा जा सकता है।

क्योंकि ये एक अलंकार है इससे किसी व्यक्ति प्राणी का नाम समझना एक भूल है – विसंगति है – मगर बहुत से रामपालिये चेले चपाटे अपनी मूर्खता में ये काम करने से भी बाज़ नहीं आते उन्हें कुछ शास्त्रोक्त प्रमाण दिए जाते हैं –

कवि शब्द की व्युत्पत्ति : कविः शब्द 'कु-शब्दे' (अदादि) धातु से 'अच इः' (उणादि 4.139) सूत्र से 'इः' प्रत्यय लगने से बनता है। इसकी निरुक्ति है :

'क्रांतदर्शनाः क्रांतप्रज्ञा वा विद्वांसः (ऋ० द० ऋ० भू०)

"कविः क्रांतदर्शनो भवति" (निरुक्त 12.13)

इस प्रकार विद्याओ के सूक्ष्म तत्वों का दृष्टा, बहुश्रुत ऋषि व्यक्ति कवि होता है।

इसे "अनुचान" भी इस प्रसंग में कहा है [2.129] ब्राह्मणो में भी कवि के इस अर्थ पर प्रकाश डाला है –

“ये वा अनूचानास्ते कवयः” (ऐ॰ 2.2)

“एते वै काव्यो यदृश्यः” (श॰ 1.4.2.8)

“ये विद्वांसस्ते कवयः” (7.2.2.4)

शुश्रुवांसो वै कवयः (तै॰ 3.2.2.3)

अतः इन प्रमाणों से सिद्ध हुआ की वेदो में प्रयुक्त “कवि” शब्द एक अलंकार है – जहाँ जहाँ भी जिस जिस वेद मन्त्र में कवि शब्द प्रयुक्त हुआ है उसका अर्थ अलंकार से ही लेना उचित होगा, बाकी मूढ लोगो को बुद्धि तो खुद “कबीर” भी ना दे पाये देखिये कबीर ने अपने ग्रंथो में क्या लिखा है :

कबीर जी परमात्मा को सर्वव्यापक मानते हैं। कबीर जी के कुछ वचन देखे :

स्वयं संत कबीर दास जी ने भी ईश्वर को सर्वव्यापक माना है। (गुरु ग्रन्थ पृष्ठ 855)

कहु कबीर मेरे माधवा तू सरब बिआपी ॥
सरब बिआपी = सर्वव्यापी
कबीर जी कह रहे हैं की हे मेरे परमात्मा तू सर्वव्यापी है।

तुम समसरि नाही दइआलु मोहि समसरि पापी॥

तुम्हारे सामान कोई दयालु नहीं है, और मेरे सामान कोई पापी नहीं है।

कबीर जी ब्रह्म का अर्थ परमात्मा लेते है काल नहीं
कबीरा मनु सीतलु भइआ पाइआ ब्रहम गिआनु ॥ (गुरु ग्रन्थ पृष्ठ 1373)

ब्रहम बिंदु ते सभ उतपाती ॥१॥

सभी की उत्पत्ति ब्रह्म अर्थात ईश्वर से होती है। (गुरु ग्रन्थ पृष्ठ 324)

अब जब कबीर जी भी ईश्वर अर्थात ब्रह्म से सभी की उत्पत्ति मानते हैं ऐसा लिखते भी हैं तब ये रामपाल और उसके चेले कबीर जैसे संत की वाणी को झूठा क्यों सिद्ध करते फिरते हैं की कबीर परमात्मा हैं ?

क्या ये धूर्तता और ढोंग पाखंड नहीं ?

क्या कबीर जैसे संत की वाणी को दूषित करना और संत कबीर को ईश्वर कहना क्या संत कबीर के शब्दों और दोहो का अपमान नहीं ?

आशा है सभ्य समाज इस लेख के माध्यम से रामपालिये और उसके चेलो के पाखंड का विरोध करेंगे और बुद्धिमान व्यक्ति इस पोस्ट के माध्यम से अपने विचार रखेंगे।

लौटो वेदो की और।

नमस्ते

सोम का वास्तविक अर्थ और सोमरस का पाखंड

JULY 8, 2015 1 COMMENT

अ हं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।

अ हं भुवं यजमानस्य चोदिताऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ।।

– ऋ० मं० १०। सू० ४९। मं० १।।

हे मनुष्यो! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूं। मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करनेहारा और मुझ को वह वेद यथावत् कहता उस से सब के ज्ञान को मैं बढ़ाता; मैं सत्पुरुष का प्रेरक यज्ञ करनेहारे को फलप्रदाता और इस विश्व में जो कुछ है उस सब कार्य्य का बनाने और धारण करनेवाला हूं। इसलिये तुम लोग मुझ को छोड़ किसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो।

नमस्ते मित्रो,

जैसा की आप सभी जानते हों हमारे देश में अनेको विद्वान और गुरुजन होते चले आये हैं और होते भी रहेंगे क्योंकि ये देश ही विद्वान उत्पन्न करने वाला है, इसीलिए इस देश आर्यावर्त को विश्वगुरु कहा जाता है, मगर ये भी एक कटु सत्य है की इसी देश में अनेको ऐसे भी तथाकथित और स्वघोषित विद्वान होते आये हैं जिनका उद्देश्य ही धर्म अर्थात वेद और वेदज्ञान का उपहास करना रहा है, ऐसे ही एक तथाकथित विद्वान हुए थे जिनका नाम था नारायण भवानराव पावगी इन्होने कुछ पुस्तके लिखी थी जिनमे कुछ हैं

1. आर्यावर्तच आर्यांची जन्मभूमि व उत्तर ध्रुवाकडील त्यांच्या वसाहती (इ.स. १९२०)

2. ऋग्वेदातील सप्तसिंधुंचा प्रांत अथवा आर्यावर्तातील आर्यांची जन्मभूमि आणि उत्तर ध्रुवाकडील त्यांच्या वसाहती (इ.स. १९२१)

3. सोमरस-सुरा नव्हे (इ.स. १९२२)

इन पुस्तको में लेखक ने वेदो, वैदिक ज्ञान और ऋषियों पर अनेक लांछन लगाये जिनमे प्रमुखता से ये सिद्ध करने की कोशिश की गयी की वैदिक काल में ऋषि और सामान्य मानव भी होम के दौरान सोमरस का पान देवताओ को करवाते थे और अपनी इच्छित मनोकामनाओ की पूर्ति हेतु यज्ञ में पशु वध, नरमेध भी करते थे। अब इन आधारहीन तथ्यों के आधार पर अनेको विधर्मी और महामानव आदि अपनी वेबसाइट और लेखो के माध्यम से हिन्दुओ के मन में वेदज्ञान के प्रति जहर भरने का कार्य करते हैं, उनमे मुख्यत जो आरोप लगाया जाता है वो है :

वेदो और वैदिक ज्ञान के अनुसार ऋषि आदि अपनी मनोकामनाए पूरी करने हेतु अनेको देवताओ को सोमरस (शराब) की भेंट करते थे।

सोमरस बनाने की विधि वेद में वर्णित है ऐसा भी इनका खोखला दावा है।

आइये एक एक आक्षेप को देखकर उसका समुचित जवाब देने की कोशिश करते हैं।

आक्षेप 1. वेदों में वर्णित सोमरस का पौधा जिसे सोम कहते हैं अफ़ग़ानिस्तान की पहाड़ियों पर ही पाया जाता है। यह बिना पत्तियों का गहरे बादामी रंग का पौधा है। जिसे यदि उबाल कर इसका पानी पीया जाय तो इससे थोड़ा नशा भी होता है। कहते हैं यह पौरुष वर्धक औषधि के रूप में भी प्रयोग होता है।
सोम वसुवर्ग के देवताओं में हैं ।
मत्स्य पुराण (5-21) में आठ वसुओं में सोम की गणना इस प्रकार है-
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोज्नलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोज्ष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

समाधान : सोमलता की उत्पत्ति जो बिना पत्ती का पौधा है ऐसा इनका विचार है जो अफगानिस्तान की पहाड़ियों में पैदा होता है ऐसा इनका दावा है उसके लिए ये ऋग्वेद 10.34.1 का मन्त्र "सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः" उद्धृत करते हैं। मौजवत पर्वत को आजके हिन्दुकुश अर्थात अफगानिस्तान से निरर्थक ही जोड़ने का प्रयास करते हैं जबकि सच्चाई इसके विपरीत है।

निरुक्त में "मूजवान पर्वतः" पाठ है मगर वेद का मौजवत और निरुक्त का मूजवान एक ही है, इसमें संदेह होता है, क्योंकि सुश्रुत में "मुञ्जवान" सोम का पर्याय लिखा है अतः मौजवत, मूजवान और मुञ्जवान पृथक पृथक हैं ज्ञात होता है। वेद में एक पदार्थ का वर्णन जो सोम नाम से आता है वह पृथ्वी के वृक्षों की जान है। पृथ्वी की वनस्पति का पोषक है, वनस्पति में सौम्यभाव लाने वाला औषिधिराज है और वनस्पतिमात्र का स्वामी है। वह जिस स्थान में रहता है उसको मौजवत कहते हैं। मेरी पिछली पोस्ट में गौओ के निवास को व्रज कहते हैं ये सिद्ध किया था उसी प्रकार सोम के स्थान को मौजवत कहा गया है। यह स्थान पृथ्वी पर नहीं किन्तु आकाश में है। क्योंकि वनस्पति की जीवनशक्ति चन्द्रमा के आधीन है इसलिए उसका नाम सोम है वह औषधि राज है। अलंकारूप से वह लतारूप है क्योंकि जो भी व्यक्ति शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष को समझते हैं जानते हैं उन्हें पता है की चन्द्रमा पंद्रह दिन तक बढ़ता और पंद्रह दिन तक घटता है, इसे न समझकर व्यर्थ की कोरी कल्पना कर ली गयी की शुक्लपक्ष में इस सोमलता के पत्ते होते हैं और कृष्णपक्ष में गिर जाते हैं।

सोम वसुवर्ग के देवताओ में हैं ये भी मिथ्या कल्पना इनके घर की है क्योंकि जो वसु का अर्थ भली प्रकार जानते तो ऐसे दोष और मिथ्या बाते प्रचारित ही न करते, आठ वसु में सोम भी शामिल है उसके लिए उपर्लिखित पुराण का श्लोक उद्धृत करते हैं

मत्स्य पुराण (5-21) में आठ वसुओं में सोम की गणना इस प्रकार है-
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोज्नलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोज्ष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

भागवत पुराण के अनुसार- द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु। महाभारत में आप (अप्) के स्थान में 'अहः' और शिवपुराण में 'अयज' नाम दिया है।

अब यदि इनसे पूछा जाए की – आठ वसुओं में सोम हैं मत्स्य पुराण के अनुसार जिसका अर्थ है मादक द्रव्य यानी शराब – तो भगवत पुराण में आठ वसुओं में सोम क्यों नहीं लिखा ?

देखिये ऋषि दयानंद अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में वसु का अर्थ किस प्रकार करते हैं :

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से आठ वसु। (स. प्र. सप्तम समुल्लास)

ऋषि ने बहुत ही सरल शब्दों में वसु का अर्थ कर दिया। अब अन्य आर्ष ग्रन्थ से आठ वसुओं का प्रमाण देते हैं :

शाकल्य-'आठ वसु कौन से है?'
याज्ञ.-'अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्र और नक्षत्र। जगत के सम्पूर्ण पदार्थ इनमें समाये हुए हैं। अतः ये वसुगण हैं।

(बृहदारण्यकोपनिषद, अध्याय तीन)

इन प्रमाणों से सिद्ध है की आठ वसुओं में सोम नामक कोई नाम नहीं। हाँ यदि सोम का अर्थ चन्द्र से करते हो जैसा की इस लेख से सिद्ध भी होता है तो आपकी सोमलता और सोमरस का सिद्धांत ही खंडित हो जाता है।

आक्षेप 2. सोम की उत्पत्ति के दो स्थान है- (1) स्वर्ग और (2) पार्थिव पर्वत । अग्नि की भाँति सोम भी स्वर्ग से पृथ्वी पर आया । ऋग्वेद ऋग्वेद 1.93.6 में कथन है : 'मातरिश्वा ने तुम में से एक को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारा; गरुत्मान ने दूसरे को मेघशिलाओं से।' इसी प्रकार ऋग्वेद 9.61.10 में कहा गया है: हे सोम, तुम्हारा जन्म उच्च स्थानीय है; तुम स्वर्ग में रहते हो, यद्यपि पृथ्वी तुम्हारा स्वागत करती है । सोम की उत्पत्ति का पार्थिव स्थान मूजवन्त पर्वत (गान्धार-कम्बोज प्रदेश) है'। ऋग्वेद 10.34.1

समाधान : यहाँ भी "आँख के अंधे और गाँठ के पुरे" वाली कहावत चरितार्थ होती है देखिये :

अप्सु में सोमो अब्रवीदंतविर्श्वानी भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः।। (ऋग्वेद 1.23.20)

यहाँ सोम समस्त औषधियों के अंदर व्याप्त बतलाया गया है। इस सोम को ऐतरेयब्राह्मण 7.2.10 में स्पष्ट कह दिया है की "एतद्वै देव सोमं यच्चन्द्रमाः" अर्थात यही देवताओ का सोम है जो चन्द्रमा है। इस सोम को गरुड़ और श्येन स्वर्ग से लाते हैं। गरुड़ और श्येन भी सूर्य की किरणे ही हैं। सोम का सौम्य गुण औषधियों पर पड़ता है, यदि स्वर्ग से गरुड़ और श्येन द्वारा उसका लाना है।

ऐसे वैदिक रीति से किये अर्थो को ना जानकार व्यर्थ ही वेद और सत्य ज्ञान पर आक्षेप लगाना जो सम्पूर्ण विज्ञानं सम्मत है निरर्थक कार्य है, क्योंकि आज विज्ञानं भी प्रमाणित करता है की चन्द्रमा की रौशनी अपनी खुद की नहीं सूर्य की रौशनी ही है यही बात इस मन्त्र में यथार्थ रूप से प्रकट होती है और दूसरा सबसे बड़ा विज्ञानं ये है की चन्द्रमा जो रात को प्रकाश देता है उससे औषधियों का बल बढ़ता है।

आशा है इस लेख के माध्यम से सोमरस, सोमलता आदि जो मिथ्या बाते फैलाई जा रही हैं उनपर ज्ञानीजन विचार करेंगे। ईश्वर कृपा से इसी विषय पर जो और आक्षेप लगाये हैं उनका भी समाधान प्रस्तुत होता रहेगा

लौटो वेदो की और

नमस्ते

ईश्वर निराकार है – एक तर्कपूर्ण समाधान

JULY 2, 2015 LEAVE A COMMENT

शंका निवारण :

पूर्वपक्षी : क्या ईश्वर के हाथ पाँव आदि अवयव हैं ?

उत्तरपक्षी : ये शंका आपको क्यों हुई ?

पूर्वपक्षी : क्योंकि बिना हाथ पाँव आदि अवयव ईश्वर ने ये सृष्टि कैसे रची होगी ? कैसे पालन और प्रलय करेगा ?

उत्तरपक्षी : अच्छा चलिए में आपसे एक सवाल पूछता हु – क्या आप आत्मा रूह जीव को मानते हैं ?

पूर्वपक्षी : जी हाँ – में आत्मा को मानता हु – सभी मनुष्य पशु आदि के शरीर में है – पर ये मेरे सवाल का जवाब तो नहीं – मेरे पूछे सवाल से इस जवाब का क्या ताल्लुक ? कृपया सीधा जवाब दीजिये।

उत्तरपक्षी : भाई साहब कुछ जवाब खोजने पड़ते हैं – खैर चलिए ये बताये शरीर में हाथ पाँव आदि अवयव होते हैं क्योंकि जीव को इनसे ही सभी काम करने होते हैं – पर जो आत्मा होती है उसके अपने हाथ पाँव भी होते हैं क्या ?

पूर्वपक्षी : नहीं होते।

उत्तरपक्षी : क्यों नहीं होते ?

पूर्वपक्षी : #$*&)_*&(*#$*$()
(सर खुजाते हुए – कोई जवाब नहीं – चुप)

उत्तरपक्षी : जब एक आत्मा जो सर्वशक्तिमान ईश्वर के अधीन है – बिना हाथ पाँव अवयव आदि के – मेरे इस शरीर में विद्यमान रहकर – शरीर को चला सकती है – तो ईश्वर जो सर्वशक्तिमान है – वो ये सृष्टि का निर्धारण उत्पत्ति प्रलय सञ्चालन वो भी बिना हाथ पाँव आदि अवयव क्यों नहीं कर सकता ? इसमें आपको कैसे शंका ? कमाल के ज्ञानी हो आप ?

पूर्वपक्षी : #$*&)_*&(*#$*$()
(चुपचाप गुमसुम चले गए)

आर्य समाज, वेद, वेद विशेष, वैदिक दर्शन, वैदिक धर्म, वैदिक विज्ञानं, श्रेष्ठ आर्य, समाज सुधार

वेदो की कुछ पर अतिज्ञानवर्धक मौलिक शिक्षाये :

JULY 2, 2015 LEAVE A COMMENT

1. जीवन भर (शत समां पयंत) निष्काम कर्म करते रहना चाहिए। इस प्रकार का निष्काम कर्म पुरुष में लिप्त नहीं होता है। (यजु० ४०।२)

2. जो ग्राम, अरण्य, रात्रि-दिन में जानकार अथवा अजानकार बुरे कर्म करने की इच्छा है अथवा भविष्य में करने वाले हैं उनसे परमेश्वर हमें सदा दूर रखे।

3. हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर वा विद्वन आप हमें दुश्चरित से दूर हटावे और सुचरित में प्रवृत करे (यजु० ४।२८)

4. हे पुरुष ! तू लालच मत कर, धन है ही किसका। (यजु० ४०।१)

5. एक समय में एक पति की एक ही पत्नी और एक पत्नी का एक ही पति होवे। (अथर्व० ७।३७।१)

6. हमारे दायें हाथ में पुरुषार्थ हो और बायें में विजय हो। (अथर्व० ७। ५८।८)

7. पिता पुत्र, भाई-बहिन आदि परस्पर किस प्रकार व्यवहार करे – इसका वर्णन अथर्व० ३।३० सूक्त में हैं।

8. द्यूत नहीं खेलना चाहिए। इसको निंद कर्म समझे। (ऋग्वेद १०।३४ सूक्त)

9. सात मर्यादाएं हैं जिनका सेवन करने वाला पापी माना जाता है। इन सातो पापो को नहीं करना चाहिए। स्तेय, तलपारोहण, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान, दुष्कृत कर्म पुनः पुनः करना, तथा पाप करके झूठ बोलना – ये साथ मर्यादाये हैं। (ऋग्वेद १०।५।६)

10. पशुओ के मित्र बनो और उनका पालन करो। (अथर्व० १७।४ और यजु० १।१)

11. चावल खाओ यव खावो उड़द खाओ तिल खाओ – इन अन्नो में ही तुम्हारा भाग निहित है। (अथर्व० ६।१४०।२)

12. आयु यज्ञ से पूर्ण हो, मन यज्ञ से पूर्ण हो, आत्मा यज्ञ से पूर्ण हो और यज्ञ भी यज्ञ से पूर्ण हो। (यजु० २२।३३)

13. संसार के मनुष्यो में न कोई छोटा है और न कोई बड़ा है। सब एक परमात्मा की संतान हैं और पृथ्वी उनकी माता है। सबको प्रत्येक के कल्याण में लगे रहना चाहिए (ऋग्वेद ५।६०।५)

14. जो samast प्राणियों को अपनी आत्मा में देखता है उसे किसी प्रकार का मोह और शोक नहीं होता है। (यजु ४०।६)

15. परमेश्वर यहाँ वहां सर्वत्र और सबके बाहर भीतर भी है। (यजु० ४०।५)

क्या वेदो को ऋषि वेद व्यास ने लिखा था ? मिथक से सच्चाई की ओर

JULY 2, 2015 LEAVE A COMMENT

वे पौराणिक मित्र जो ये कहते नहीं थकते की वेदो को "वेद व्यास" जी ने लिखा – वो या तो पूर्वाग्रह के शिकार हैं या फिर अपने पुराणो के ज्ञान को जानते नहीं हैं –

गरुण पुराण के अनुसार –

वेद व्यास जी ने वेद रूपी वृक्ष को अनेक शाखाओ में विभक्त किया
गरुण पुराण अध्याय १ (पृष्ठ १८)

अब जब वेद पहले ही विद्यमान थे जैसे की इस पुराण को पढ़कर पता चलता है – तब ये पौराणिक मित्र क्यों लोगो को भरमाते रहते हैं की वेद व्यास जी ने वेदो की रचना की ????? यहाँ स्पष्ट रूप से लिखा है की वेद व्यास जी ने वेदो की रचना नहीं की – तो कृपया उल जलूल तर्क देकर समय व्यर्थ न करे – अपना भी और मेरा भी

मेरा मानना है की वेदो की शाखा भी वेद व्यास जी से पहले ही विद्यमान थी – क्योंकि वेद व्यास जी के पिता ऋषि पराशर जी पराशर संहिता में बहुत जगह वेद और वेदो की शाखाओ की बात करते हैं –

अब यहाँ विचारणीय तथ्य ये है की यदि उपरोक्त वर्णित पुराण को प्रमाण माने तो वेदो को शाखाओ में विभक्त करने वाले वेद व्यास जी थे – तब कैसे पराशर जी ने अपने पराशर संहिता में वेद की शाखाओ का भी जिक्र किया ???

अब कुछ पौराणिक ये कहेंगे की व्यास उनके बेटे थे जब उन्होंने वेदो की शाखाये बना दी तब उन्होंने अपने ग्रन्थ में लिखा –

तो मेरा सुझाव उनको ये है की जाके पहले अपना मुंह गरम पानी से धो ले और अपनी नींद को उत्तर लेवे – तब बात करे –

क्योंकि जब पराशर संहिता लिखी गयी तब वेद व्यास जी उत्पन्न नहीं हुए थे – अगर आप पौराणिक फिर भी मानते हैं तो कृपया प्रमाण ले आये –

नमस्ते –

ईश्वर का वैदिक स्वरुप – ईश्वर, जीव और प्रकृति – तीनो कारण स्वयं सिद्ध और अनादि हैं

JULY 1, 2015 LEAVE A COMMENT

संस्कृत भाषा में परमात्मा = परम + आत्मा तथा जीवात्मा = जीव + आत्मा दो शब्द हैं।

परमात्मा शब्द का अर्थ है – सर्वश्रेष्ठ आत्मा

और जीवात्मा का अर्थ है प्राणधारी आत्मा

आत्मा शब्द दोनों के लिए आता है और बहुधा परम-आत्मा तथा जीव-आत्माओ का भेदभाव किये बिना समस्त जीवनतत्वो के लिए व्यवहृत किया जाता है।

परमात्मा और जीवात्माओं के कार्यो में इतनी समानता है [मगर दोनों के कार्य क्षेत्र निसंदेह अत्यंत विभिन्न हैं] की प्रायः इनके सम्बन्ध के विषय में भ्रम हो जाता है और इस भ्रम के कारन दर्शनशास्त्र तथा धर्म दोनों क्षेत्रो में बाल की खाल निकाली जाती है।

खासतौर पर ईश्वर को ना मानने वाले लोग मनुष्य को ही "सिद्ध" व "ईश्वर" का दर्ज देकर अपनी अल्पज्ञता के कारण ऐसा विचार लाते हैं –

वैदिक ईश्वर का स्वरुप कैसा है और जीव का स्वरुप कैसा है – जब इस प्रकार की चर्चा की जाती है तब आवश्यक हो जाता है इस प्रकृति के बारे में भी कुछ जाना जाए – तो आइये – इस विषय पर कुछ विचार करे –

इस कार्यरूप सृष्टि में तीन नियम बहुत ही स्पष्ट रूप से दीखते हैं :

पहिला – इस सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ नियमपूर्वक, परिवर्तनशील है।

दूसरा – प्रत्येक जाती के प्राणी अपनी जाती के ही अंदर उत्तम, माध्यम और निकृष्ट स्वाभाव से पैदा होते हैं।

तीसरा – इस विशाल सृष्टि में जो कुछ कार्य हो रहा है वह सब नियमित, बुद्धिपूर्वक और आवश्यक है।

पहिला नियम : सृष्टि नियमपूर्वक परिवर्तनशील है इसका अर्थ जो लोग सृष्टि को स्वाभाविक गुण से परिवर्तनशील मानते हैं वे गलती पर हैं क्योंकि स्वाभाव में परिवर्तन नहीं होता ऐसे लोग भूल जाते हैं की परिवर्तन नाम है अस्थिरता का और स्वाभाव में अस्थिरता नहीं होती क्योंकि उलटपलट, अस्थिर ये नैमित्तिक गुण हैं स्वाभाविक नहीं। इसलिए सृष्टि में परिवर्तन

स्वाभाविक नहीं। इसकी एक बड़ी वजह ये भी है की यदि प्रकृति में परिवर्तन स्वाभाविक माने तो ये अनंत परिवर्तन यानी अनंत गति माननी पड़ेगी और फिर एकसमान अनंत गति मानने से संसार में किसी भी प्रकार से ह्रासविकास संभव नहीं रहेगा किन्तु सृष्टि में बनने और बिगड़ने की निरंतर प्रक्रिया से सिद्ध होता है की सृष्टि का परिवर्तन नैमित्तिक है सवभविक नहीं, इसीलिए इस परिवर्तनरुपी प्रधान नियम के द्वारा यह सिद्ध होता है की सृष्टि के मूल कारणों में से यह एक प्रधान कारण है जो खंड खंड, परिवर्तन शील और परमाणुरूप से विद्यमान है। परन्तु यह परमाणु चेतन और ज्ञानवान नहीं हैं इसकी बड़ी वजह है की जो भी चेतन और ज्ञानवान सत्ता होगी वो कभी दूसरे के बनाये नियमो में बंध नहीं सकती बल्कि ऐसी सत्ता अपनी ज्ञानस्वतंत्रता से निर्धारित नियमो में बाधा पहुचाती है – जहाँ तक हम देखते हैं परमाणु बड़ी ही सच्चाई से अपना काम कर रहे हैं – जिस भी जगह उनको दूसरे जड़ पदार्थो में जोड़ा गया – वहां आँख बंद करके भी कार्य कर रहे हैं जरा भी इधर उधर नहीं होते इससे ज्ञात होता है की इस सृष्टि का परिवर्तनशील कारण जो परमाणु रूप में विद्यमान है ज्ञानवान नहीं बल्कि जड़ है – इसी जड़, परिवर्तनशील और परमाणु रूप उपादान कारण को माया, प्रकृति, परमाणु मेटर आदि नामो से कहा जाता है और संसार के कारणों में से एक समझा जाता है

दूसरा नियम : सभी प्राणियों के उत्तम और निकृष्ट स्वाभाव हैं। अनेक मनुष्य प्रतिभावान, सौम्य और दयावान होते हैं, अनेक मुर्ख उद्दंड और निर्दय होते हैं। इसी प्रकार अनेक गौ, घोडा आदि पशु स्वाभाव से ही सीधे होते हैं और अनेक शेर, आदि क्रोधी और दौड़दौड़कर मारने वाले होते हैं यहाँ देखने वाली बात है की ये स्वभावविरोध शारीरिक यानी भौतिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक है, जो चैतन्य बुद्धि और ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। लेकिन ध्यान देने वाली है ये ज्ञान प्राणियों के सारे शरीर में व्याप्त नहीं है, क्योंकि यदि सारे शरीर में ये ज्ञान व्याप्त होता तो किसी का कोई अंग भंग यथा अंगुली, हाथ, पैर आदि कट जाने पर उसका ज्ञानंश कम हो जाना चाहिए लेकिन वस्तुतः ऐसा होता नहीं इसलिए यह निश्चित और निर्विवाद है की ज्ञानवाली शक्ति जो प्राणियों में वास करती है वो पुरे शरीर में व्याप्त नहीं है प्रत्युत वह एकदेशी, परिच्छिन्न और अनुरूप ही है क्योंकि सुक्षतिसूक्ष्म कृमियों में भी मौजूद है दूसरा तथ्य ये भी है की यदि पुरे शरीर में ज्ञानशक्ति मौजूद होती तो जैसे शरीर का आकर बढ़ता है वैसे उस शक्ति को भी बढ़ना पड़ता जबकि ऐसा होता नहीं और ये शक्ति परमाणुओ के संयोग से भी नहीं बनी क्योंकि ऊपर सिद्ध किया गया की ज्ञानवान तत्व, परमाणु संयुक्त होकर नहीं बन सकता और न ही ये हो सकता है की अनेक जड़ और अज्ञानी परमाणु एकत्रित होकर परस्पर संवाद ही जारी रख सकते हो। यदि कोई मनुष्य ब्रिटेन में जिस समय पर गाडी दौड़ा रहा है – तो उसी समय पूरी दुनिया में मौजूद इंसान उस गाडी और मनुष्य को नहीं देख पा रहे इसलिए प्राणियों में मौजूद ज्ञानवान शक्ति, अल्पज्ञ है, एकदेशी है, परिच्छिन्न है। इसलिए इस शक्ति को जीव, रूह और सोल के नाम से जानते हैं।

इस विस्तृत सृष्टि में जो कुछ कार्य हो रहा है, वह नियमित, बुद्धिपूर्वक और आवश्यक है। सूर्य चन्द्र और समस्त ग्रह उपग्रह अपनी अपनी नियत धुरी पर नियमित रूप से भ्रमण कर रहे हैं। पृथ्वी अपनी दैनिक और वार्षिक गति के साथ अपनी नियत सीमा में घूम रही है। वर्षा, सर्दी और गर्मी नियत समय में होती है। मनुष्य और पशुपक्ष्यादि के शरीरो की बनावट वृक्षों में फूलो और फलो की उत्पत्ति, बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज का नियम और प्रत्येक जाती की आयु और भोगो की व्यवस्था आदि जितने इस सृष्टि के स्थूल सूक्ष्म व्यवहार हैं, सबमे

व्यवस्था, प्रबंध और नियम पाया जाता है। नियामक के नियम का सब बड़ा चमकार तो प्रत्येक प्राणी के शरीर की वृद्धि और ह्रास में दिखलाई देता है। क्यों एक बालक नियत समय तक बढ़ता और क्यों एक जवान धीरे धीरे ह्रास की और – वृद्धावस्था की और बढ़ता जाता है इस बात का जवाब कोई नहीं दे सकता यदि कोई कहे की वृद्धि और ह्रास का कारण आहार आदि पोषक पदार्थ हैं, तो ये युक्तियुक्त और प्रामाणिक नहीं होगा क्योंकि हम रोज देखते हैं एक ही घर में एक ही परिस्थिति में और एक ही आहार व्यवहार के साथ रहते हुए भी छोटे छोटे बच्चे बढ़ते जाते हैं और जवान वृद्ध होते जाते हैं तथा वृद्ध अधिक जर्जरित होते जाते हैं। इन प्रबल और चमत्कारिक नियमो से सूचित होता है की इस सृष्टि के अंदर एक अत्यंत सूक्ष्म, सर्वव्यापक, परिपूर्ण और ज्ञानरूपा चेतनशक्ति विद्यमान है जो अनंत आकाश में फ़ैल हुए असंख्य लोकलोकान्तरो का भीतरी और बाहरी प्रबंध किये हुए हैं। ऐसा इसलिए तार्किक और प्रामाणिक है क्योंकि नियम बिना नियामक के, नियामक बिना ज्ञान के और ज्ञान बिना ज्ञानी के ठहर नहीं सकता। हम सम्पूर्ण सृष्टि में नियमपूर्वक व्यवस्था देखते हैं, इसलिए सृष्टि का यह तीसरा कारण भी सृष्टि के नियमो से ही सिद्ध होता है। इसी को परमात्मा, ईश्वर खुदा और गॉड कहते आदि अनेक नामो से पुकारते हैं हैं जिसका मुख्य नाम ओ३म है।

सृष्टि के ये तीनो कारण स्वयंसिद्ध और अनादि हैं।

मेरे मित्रो, ज्ञान और विज्ञान की और लौटिए,

सत्य और न्याय की और लौटिए

वेदो की और लौटिए….

आओ लौट चले वेदो की और।

ईश्वर विचार – तर्क आधार पर ईश्वर की सिद्धि

JUNE 30, 2015 LEAVE A COMMENT

जब हम संसार में किसी पदार्थ को देखते हैं तो हमें उस में दो प्रकार के पदार्थ प्रतीत होते हैं – एक परिणामी दूसरे अपरिणामी।

जितने साकार पदार्थ हैं वे सब परिणामी और जितने निराकार पदार्थ हैं वे अपरिणामी हैं।

परन्तु जब हम इन साकार पदार्थो में प्रथम मनुष्य शरीर को देखते हैं तो यह शरीर माता पिता के संयोग से उत्पन्न होता है बढ़ता है घटता है और अंत को नष्ट हो जाता है इससे हमें क्या अनुमान होता है जो पैदा हुआ है वो नष्ट भी होगा जिस में परिणाम है वह पैदा हुआ है। जब परिणामी पदार्थो को उत्पत्ति वाला सिद्ध कर लेते हैं तो हम व्यष्टि पदार्थ अर्थ एक व्यक्ति को छोड़ कर समष्टि जगत को देखते हैं तो यह ही परिणाम प्रतीत होता है की अवयवी के अवयव परिणाम को प्राप्त होते हैं वह अवयवी भी परिणामी होता है क्योंकि सम्पूर्ण अवयवो का नाम अवयवी है जब हम इस प्रकार सूक्ष्म विचार करते हैं तो हमें जगत परिणामी प्रतीत होने लगता है हम जगत के परिणामी होने से उसकी उत्पत्ति का अनुमान कर लेते हैं यद्यपि मध्य अवस्था में उसकी उत्पत्ति का बोध अनुमान के बिना नहीं होता फिर

भी शब्द प्रमाण से जगत हुतपन्न हुआ और जगत, संसार, सृष्टि इसके पर्यायवाचक जितने शब्द दिए जाते हैं सब के अर्थ उत्पत्ति वाले के हैं।

जब हमने जगत को उत्पत्ति वाला अनुभव किया तो हमारा विचार वह होता है की यह उत्पत्ति स्वाभाविक है या नैमित्तिक दूसरे हम जिस पदार्थ की उत्पत्ति जिस पदार्थ से देखते हैं उसका लय भी उसी पदार्थ में होता है इस से कार्यरुप सब पदार्थो में अनित्यता और कारणरूप पदार्थो में नित्यता का बोध होता है जब हम पांच भूतो में अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश में सब पदार्थो का लय देखते हैं तो उन्ही पंच पदार्थो से इस जगत की उत्पत्ति का विचार करते हैं.

यद्यपि कार्य अवस्था इन पदार्थो की अनित्य है परन्तु कर्णावस्था में यह नित्य होते हैं जब हम जगत के उपादान कारण निमित्त भी हैं अथवा जगत पंचभूतों ही से उत्पन्न हुआ वा इन के बिना कोई और भी पदार्थ है ?

जब हम पृथ्वी को विचरते हैं तो जड़ प्रतीत होती है जल भी ज्ञानशून्य है अग्नि भी ज्ञान नहीं रखती वायु में भी ज्ञान का अभाव वही प्रतीत होता है आकाश ज्ञान से हीं है इस प्रकार के विचार से हम सम्पूर्ण भूतो को ज्ञान से रहित पाते हैं।

परन्तु जब हम संसार में जो सोने के बने गहने में सोने और गुण और चांदी में चांदी के गुण पाते हैं इस से हमको बोध होता है की कारण के गुण अनुकूल कार्य में गन रहते हैं। जब भूतो में ज्ञान गुण नहीं हैं तो उसके कार्यरूप जगत में भी ज्ञान नहीं हो सकता और जगत में मनुष्यो को ज्ञान से युक्त देखते हैं तो शीघ्र विचार उत्पन्न होता है की यह ज्ञान गुण किसका है ?

बहुत से लोग खासकर चार्वाकी कहते हैं पृथक भूतो में तो चैतन्यता नहीं किन्तु संयोग से उत्पन्न होती है यहाँ ध्यान देने वाली बात है की जो गुण एक एक में न रहे वह संयोग से उत्पन्न नहीं होता जैसे मैदे में मधुरता नहीं – जल में मधुरता नहीं उत्पन्न होती – चीनी में मधुरता है – जल में मिलाने से तुरंत मधुरता उत्पन्न हो जाती है।

दूसरे रेल के इंजन में पृथ्वी है, जल है, अग्नि है, वायु है, आकाश है परन्तु ज्ञानशक्ति नहीं है, मृतक शरीर में पांचो ज्ञानशक्ति का आधार कोई दूसरी वास्तु है। जब हम इस प्रकार सृष्टि में जड़ चैतन्य को दो स्वरूप करके विचार लेते हैं तो हमको सृष्टि में इनका संयोग और सृष्टि में स्वाभाव से संयोग है या निमित्त से यह विचार उत्पन्न होता है। जब हम बाज़ार जाते हैं तो हम को कभी कहीं ईंटे गिरी पड़ी पाती है तो हम अनुमान से जान जाते हैं ये स्वाभाविक गिरी होंगी। परन्तु यदि किसी स्थान पर १० की निश्चित संख्या में गिन गिन के किसी ने राखी हैं तो इससे यह सिद्ध होता है की जहाँ पर नियम हैं वह नैमित्तिक और जो वे नियम हैं वह स्वाभाविक हैं।

जब सृष्टि में नियम को देखते हैं तो इसके हर एक पदार्थ में नियम प्रतीत होता है, मनुष्य स्त्री के संयोग से लड़का उत्पन्न होता है, घोडा घोड़ी के संयोग से घोडा ही होता है, घोड़ी और गधे के संयोग से खच्चर – इसी प्रकार सब पदार्थ नियमानुसार प्रतीत होते हैं, गर्मी में देश

घंटे की रात और सर्दी में १४ घंटे की – कहने का तात्पर्य जिधर देखो उधर नियम बंध रहा है फिर इसे किस युक्ति से स्वाभाविक माने ?

दूसरा जो स्वाभाविक गुण हैं वे सर्वदा एक रास रहते हैं वे बिना किसी निमित्त के बदलते नहीं जैसे जल का स्वाभाव शीतल है वह बिना अग्नि संयोग के उष्ण न होगा – इससे सिद्ध है की जल में उत्पन्न वह उष्णता अग्नि की है – न की जल की – इससे सिद्ध है की पंचभूतों में ज्ञान नहीं – ना ही वे स्वयं से संयोग वियोग कर ही सकते हैं क्योंकि पंचभूत जड़ पदार्थ हैं –

इसलिए भूतो के स्वाभाव से तो जगत की उत्पत्ति असंभव है – इसलिए यह निश्चित किया जाता है की जगत का निमित्त कारण ज्ञानशक्ति संपन्न सर्वशक्तिमान कोई ना कोई अवश्य ही है।

जब हम इस प्रकार ईश्वर को मानेंगे तो कुछ लोगो को शंका उत्पन्न होगी की –

ईश्वर ने जगत उत्पन्न किया है तो ईश्वर को किसने उत्पन्न किया ?

इसका उत्तर है की –

परिणामी पदार्थ कार्य होते हैं उनको कारण की अपेक्षा होती है यदि ईश्वर परिणामी हो तो उसका भी कारण हो मगर ईश्वर नित्य है अपरिणामी है – उसका कर्ता नहीं हो सकता।

यदि कोई कहे ईश्वर कहाँ है ?

तो उत्तर यही ठीक है रहने का ठिकाना एकदेशी के लिए होता है – विभु के लिए नहीं –

इसलिए ईश्वर निराकार शक्ति है जो जगत का निमित्त कारण है

इति सिद्धम

परमपिता परमात्मा ने चार ऋषियों को चारो वेदो का प्रकश उनके आत्मा में किया था

JUNE 30, 2015 LEAVE A COMMENT

कोई वेद आगे पीछे पहले बाद में नहीं आया।

आक्षेप करिये – मगर जो आक्षेप का जवाब आपको मिल चूका – जिसमे आपकी सम्मति हो चुकी – तब पुनः उसी विषय को बार बार उठाना ये बुद्धिमानी नहीं – कृपया स्वयं एक बार इस पोस्ट को पढ़े फिर यदि कोई शंका हो तो बताये – अन्यथा इस सिद्धातं को जिस प्रकार सनातन मत मानता चला आ रहा है उसी प्रकार मानकर आगे बढ़िए – बाकी आपकी जैसी इच्छा वैसे करे।

वेदत्रयी : तीन प्रकार के मंत्रो के होने, अथवा वेदो मे ज्ञान,कर्म ओर उपासना तीन प्रकार के कर्तव्यो के वर्णन करने से वेदत्रयी कहे जाते है ।

यही बात सर्वानुक्रमणीवृत्ति की भूमिका मे "षड्गुरुशिष्य" ने कही है-

"विनियोक्तव्यरूपश्च त्रिविधः सम्प्रदर्श्यते|
ऋग् यजुः सामरूपेण मन्त्रोवेदचतुष्टये||"

अर्थात् यज्ञो मे तीन प्रकार के रूप वाले मंत्र विनियुक्त हुआ करते है|

तस्माद यज्ञात सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद यजुस्तस्मादजायत।। (यजु० 31.7)

उस सच्चिदानंद, सब स्थानो में परिपूर्ण, जो सब मनुष्यो द्वारा उपास्य और सब सामर्थ्य से युक्त है, उस परब्रह्म से ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और छन्दांसि – अथर्ववेद ये चारो वेद उत्पन्न हुए।

अन्य साक्षी :

यस्माद्दचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपकशन।
सामानि यस्य लोमानी अथर्वांगिरसो मुखं।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमःस्विदेव सः।। (अथर्व० 10.4.20)

अर्थ : जो सर्वशक्तिमान परमेश्वर है, उसी से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद (अंगिरसः) अथर्ववेद, ये चारो उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार रूपकालंकार से वेदो की उत्पत्ति का प्रकाश ईश्वर करता है की अथर्ववेद मेरे मुख के समतुल्य, सामवेद लोमो के सामान, यजुर्वेद ह्रदय के सामान और ऋग्वेद प्राण के सामान हैं, (ब्रूहि कतमःस्विदेव सः) चारो वेद जिससे उत्पन्न हुए हैं सो कौन सा देव है ? उसको तुम मुझसे कहो, इस प्रशन का उत्तर यह है की (स्कम्भं तम) जो सब जगत का धारणकर्ता परमेश्वर है, उसका नाम स्कम्भ है, उसी को तुम वेदो का कर्ता जानो। (ऋ० भा० भू० वेदोत्पत्ति विषय)

ब्राह्मणो ने भी इस मान्यता को यथावत स्वीकार किया है –

"एवं वा श्वरेस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्।
यद्दग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वांगिरसः।। (शत० 14.5)

अर्थात : उस महान शक्तिशाली परमात्मा के निश्वासरूप में प्रकट ये चारो वेद जो ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अंगिरा से प्रकट अथर्ववेद के नाम से प्रसिद्द हैं।

अन्य साक्षी :

"तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्र्यो वेदा अजायन्त, अग्नेऋग्वेदो, वायोर्यजुर्वेदः, सुर्यात्साम्वेदः।" (श० 11.5.2.3)

अर्थात : उन तपस्वी ऋषियों के माध्यम से परमात्मा ने अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद, इस प्रकार त्रयीविद्यारूप चार वेद प्रकट किये।

अब जब वेद और ब्राह्मण ग्रन्थ दोनों ही प्रमाण हैं फिर भी कैसे कोई सनातनी ये आक्षेप कर सकता है की अथर्ववेद बाद में आया है ? क्या ये सनातनी ज्ञान होगा अथवा नवीन भूल ?

खैर मनुस्मृति से एक साक्षी और देते हैं :

अध्यापयामास पितण्शिशुरांगिरसः कविः।
पुत्रका इतिहोवाच ज्ञानेन परिग्रह्य तान।। (मनु० 2.126)

[इस प्रसंग में एक इतिवृत्त भी है] (अंगिरसः शिशुः कविः) आंगिवंशी "शिशु" नामक बालक विद्वान ने (पितृन्) अपने पिता के सामान चाचा आदि पितरो को (अध्यापयामास) पढ़ाया (ज्ञानेन परिग्रह्य) ज्ञान देने के कारण (तान "पुत्रकाः" इति ह उवाच) उनको हे पुत्रो इस शब्द से सम्बोधित किया।

कवि शब्द की व्युत्पत्ति : कविः शब्द 'कु-शब्दे' (अदादि) धातु से 'अच इः' (उणादि 4.139) सूत्र से 'इः' प्रत्यय लगने से बनता है। इसकी निरुक्ति है :

'क्रांतदर्शनाः क्रांतप्रज्ञा वा विद्वांसः (ऋ० द० ऋ० भू०)
"कविः क्रांतदर्शनो भवति" (निरुक्त 12.13)

इस प्रकार विद्याओ के सूक्ष्म तत्वों का दृष्टा, बहुश्रुत ऋषि व्यक्ति कवि होता है।
इसे "अनुचान" भी इस प्रसंग में कहा है [2.129] ब्राह्मणो में भी कवि के इस अर्थ पर प्रकाश डाला है –

"ये वा अनूचानास्ते कवयः" (ऐ० 2.2)

"एते वै काव्यो यद्दश्यः" (श० 1.4.2.8)

"ये विद्वांसस्ते कवयः" (7.2.2.4)

शुश्रुवांसो वै कवयः (तै० 3.2.2.3)

शिशु अंगिरस – यह अंगिरावंश का एक विद्वान बालक था। बाल्यावस्था में मन्त्रद्रष्टा होने के कारण यह गुणाभिधान "शिशु" नाम से ही प्रसिद्द हो गया।
इसका यह आख्यान ताण्ड्य ब्राह्मण 13.3.23-24 और पञ्च ब्रा० 13.3.24 में यथावत आता है। वहां इसे "मन्त्रकृतां मन्त्रकृत" कहा है। ऋ० 9.112 सूक्त इसी शिशु ऋषि द्वारा दृष्ट है। सामवेद में यत्सोम चित्रम………" [उ० 3.2.13] तृच् को इसके द्वारा दृष्ट होने के कारण ही "शैशव साम" कहा गया है।

उपरोक्त वेद और इतिहास प्रमाणों से सिद्ध है की परमात्मा ने चारो ऋषिये के आत्माओ में एक एक वेद का प्रकाश एक ही समय में किया था। जब चारो वेदो ने स्वंय अर्थववेद के

वेदत्व को स्वीकार किया है तो फिर अर्थववेद को नया बतलाकर वेद की सीमा से दूर करना मुर्खतामात्र है|

बाकी ज्ञानीजन विचार करे।

।। ओ३म ।।

आदि सृष्टि के मनुष्यो की भाषा क्या थी और भाषा का विस्तार कैसे हुआ ?

JUNE 30, 2015 13 COMMENTS

भाषा की उत्पत्ति :

मानव जिस समय पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ उस समय बोलने और समझने की शक्ति समपन्न अवस्था थी – यह निर्देश पहले भी किया जा चुका है की आदि सृष्टि के मनुष्य युवा अवस्था के उत्पन्न होते हैं – इसलिए उनमे बोलने की शक्ति थी तो यह भी मानना होगा की वर्ण भी थे जिनके द्वारा वह अपनी वाणी को प्रकट कर सके। यदि कोई यह माने की वर्ण नहीं थे तो उसके साथ यह भी स्वीकार करना ही पड़ेगा की मनुष्य आदिम अवस्था में गूंगा उत्पन्न हुआ। यदि गूंगा उत्पन्न हुआ तो फिर वह किसी भी हालत में बोलने वाला नहीं हो सकता। इसलिए निष्कर्ष यही निकलेगा की उसमे बोलने की शक्ति थी और जब बोलने की शक्ति थी तो ये भी तथ्यात्मक है की जो भाषा वो बोले उनके वर्ण भी होने चाहिए।

जो लोग कहते हैं की सेमिटिक भाषाए, हीब्रू अथवा अरबी आदि आर्य भाषाओ से स्वतंत्र हैं वह गलती पर हैं, कारण की मनुष्य किसी नवीन भाषा को तो कभी बना ही नहीं सकता ?

क्योंकि मैथुनी (सेक्स) सृष्टि के लोगो की भाषा सदैव उनके मातापिता तथा गुरु की भाषा होती है। लेकिन आदि मनुष्यो की भाषा पूर्ण (संस्कृत) भाषा ही थी ऐसा नियम इसलिए मान्य है क्योंकि आदि मनुष्यो का माता पिता और गुरु ईश्वर के अतिरिक्त और कोई थे ही नहीं। तो ऐसी स्थति में और कोई देशीय भाषा विरासत में मिलना असंभव है – तो साफ़ है उनकी केवल वही भाषा होगी जो सृष्टि के पदार्थो में विद्यमान हो – परमेश्वर द्वारा मनुष्य पर प्रकट किये जाने वाले ज्ञान के पूर्ण माध्यम होने की उस भाषा में क्षमता हो और वह ऐसी भाषा होनी चाहिए जो सदा प्रत्येक कल्प में एक सी रहती हो तथा आगे बोल चाल की समस्त भाषाओ को उत्पन्न करने में सक्षम हो। विशेष बात यह है की वो किसी देश विदेश की भाषा न हो और न उससे पूर्व कोई ज्ञान वा भाषा पृथ्वी पर कहीं मौजूद हो

बस यही बात है जो विशेष वर्णन के योग्य है की परमेश्वर ने मानव के पृथ्वी पर आने के साथ ही साथ वेद ज्ञान की प्रेरणा मनुष्य में दी – और वह वेद की भाषा “संस्कृत” में ईश्वरीय ज्ञान मानव को मिला जो आदि ज्ञान और आदि भाषा – दोनों था।

वाणी भाषाओ का विस्तार –

ऊपर जो कुछ दर्शाया गया है उसका भाव यह है की आदि अमैथुनी सृष्टि के मनुष्यो के शरीर तथा शरीर के सब अंग आदि आदर्श रुपी थे, जैसे वो आदि सृष्टि के मनुष्य मैथुनी सृष्टि के मनुष्यो के लिए साँचे रुपी थे अर्थात मनुष्य समाज के प्रवर्तक थे वैसे ही आदि भाषा भी साँचा रुपी और सभी भाषाओ की प्रवर्तक होनी चाहिए। इसीलिए उस आदि भाषा का नाम संस्कृत है। संस्कृत का अर्थ होगा पूर्ण भाषा यानी जो पूर्ण भाषा हो वो संस्कृत कहलाएगी।

इसी प्रकार अपूर्ण भाषाए जो वेद भाषा से संकोच, अपभ्रंश और मलेच्छित आदि होकर मनुष्य के बोल चाल की भाषाए बनती हैं। क्योंकि संस्कृत भाषा के दो भाग हैं –

1. वैदिक संस्कृत
2. लौकिक संस्कृत

प्राय सभी पश्चिमी विद्वान और अनेक भारतीय अनुसन्धानी भी संस्कृत को ही सभी भाषाओ का मूल मानते हैं – पर ध्यान देने वाली बात है की लौकिक संस्कृत की जन्मदात्री वैदिक संस्कृत है। वैदिक संस्कृत ही आदि भाषा है क्योंकि वैदिक संस्कृत अर्थात वेद की भाषा कभी भी किसी भी देश वा किसी जाती की अपने बोलचाल की भाषा नहीं रही है – क्योंकि वेदो में वाक्, वाणी आदि पदो का प्रयोग देखा जाता है भाषा का नहीं।

अब हम समझते हैं भाषा का विस्तार किस प्रकार हुआ – देखिये वेद में वैदिकी वाणी को नित्य कहा है –

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया।

(ऋग्वेद 8.75.6)

नित्यया वाचा – अर्थात नित्य वेदरूप वाणी – यानी की वैदिक संस्कृत यह सब वाणियों (भाषाओ) की अग्र और प्रथम है –

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्नं

(ऋग्वेद 10.71.1)

प्रभु से दी गयी वेदवाणी ही इस सृष्टि के प्रारंभिक शब्द थे।

ईश्वर की प्रेरणा से यह वाणी सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषियों पर प्रकट होती है।

यज्ञेन वाचः पदवीयमायणतामानवविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।

(ऋग्वेद 10.71.3)

प्रभु अग्नि आदि को वेदज्ञान देते हैं इससे अन्य यज्ञीय वृत्तिवाले ऋषियों को यह प्राप्त होती है – इसी मन्त्र में आगे लिखा है –

इस ही प्रथम, निर्दोष और अग्र वाणी को लेकर लोग बोलने की भाषा का विस्तार करते हैं।

तामाभृत्या व्यदधुः पुरूत्रा तां सप्त रेभा अभी सं नवंते।।

(ऋग्वेद 10.71.3)

इस वाणी को ऋषि मानव समाज में प्रचारित करते हैं। यह वेदवाणी सात छन्दो से युक्त है अर्थात २ कान – २ नाक – २ आँख और एक मुख ये सात स्तोता बनकर इसे प्राप्त करते हैं –

उपरोक्त प्रमाणों और तथ्यों से सिद्ध होता है की मनुष्य की एक ही भाषा थी – और मनुष्यो ने इसी वेद वाणी से अर्थात प्रथम व पूर्ण भाषा संस्कृत से – अपूर्ण भाषाए – अर्थात जितनी भाषाए आज प्रचलित हैं उनका निर्माण किया – लेकिन वैदिक संस्कृत में आज भी कोई फेर बदल नहीं हो सका – क्योंकि वैदिक संस्कृत पूर्ण भाषा है –

कृपया सत्य को जानिये –

वेद की और लौटिए —

वेद, विज्ञानं, और सृष्टि उत्पति के युवा मनुष्य

JUNE 30, 2015 LEAVE A COMMENT

नमस्ते मित्रो,

अमैथुनी सृष्टि के मनुष्य कैसे और किस अवस्था में उत्पन्न हुए होंगे ?

जैसे की आपने विषय पढ़ा – जो बहुत ही गूढ है – फिर भी हम कोशिश करेंगे इस विषय पर ध्यान रखकर – वेदो के विज्ञानं को समझने की – वेदो के अनुसार आदि सृष्टि अमैथुनी होती है – पहले समझते हैं ये अमैथुनी सृष्टि क्या है ?

अमैथुनी सृष्टि से अभिप्राय उस सृष्टि से है जिसमे जीवो के शरीर बिना मैथुन (सेक्स) द्वारा उत्पन्न होते हैं – ऐसे शरीर उत्पन्न होने के बाद ही मैथुनी सृष्टि – अभी जो आप देख रहे इस प्रकार संतति उत्पन्न करने वाली होती है।

अब कुछ लोग सोचेंगे – जब प्रकृति का नियम ही मैथुनी सृष्टि से है तो फिर किसप्रकार और क्यों अमैथुनी सृष्टि होती है ? कुछ सोचेंगे ऐसा कैसे हो सकता है ? कुछ कहेंगे वेद सदा ही ज्ञान विज्ञान और तर्क की कसौटी पर किसी तथ्य को कसता है मगर यहाँ अमैथुनी सृष्टि के लिए कौन सा विज्ञानं और तर्क है ? कुछ भाई बिना कुछ सोचे विचार ही इस पोस्ट को लाइक कर देंगे और कमेंट में अपने विचार भी प्रकट नहीं करेंगे –

खैर पहले हम जांच करते हैं की अमैथुनी सृष्टि किस प्रकार होती है :-

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयं आविशत् ।।

अर्थ : हिंस्रकर्म-अहिंस्र, मृदु (दयाप्रधान) क्रूर, धर्म घृत्यादि-अधर्म, सत्य असत्य, जिसका जो कुछ (पूर्वकल्प का) स्वयं प्रविष्ट था, वह वह उस उस को सृष्टि के समय उस (ईश्वर) ने धारण कराया। (२९)

यथा र्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयं एव र्तुपर्यये ।
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः।।

अर्थ : जैसे वसंत आदि ऋतुएँ अपने अपने समय में निज निज ऋतु चिन्हो को प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्यादि भी अपने अपने कर्मो को पूर्व कल्प के बचे कर्मानुसार प्राप्त हो जाते हैं। (३०)

(मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक २९-३०)

जिस प्रकार प्रलय काल में सभी जीव सुषुप्ति की अवस्था में गहन निद्रा में होते हैं, जैसे ही सृष्टि का समय आता है ईश्वर जीव के पूर्व कल्प के कर्मो अनुसार उचित फल देकर आदि सृष्टि में उत्पन्न उचित देह द्वारा फल भोग करवाते हैं।

अब सवाल उठेगा ये देह कैसे बनेगी ?

तो उसका जवाब है –

महर्षि मनु ने जो ऋतुओं की उपमा देकर आदि अमैथुनी सृष्टि का वर्णन किया है, यह बहुत ही सारगर्भित है, महर्षि का आशय कुछ इस प्रकार है जैसे ऋतुओं के चिन्ह बिना श्रम विशेष स्वाभाविक ही प्रगट होने लगते हैं। वसंत ऋतू में वृक्षों में वह खमीर गर्मी सर्दी के नियत प्रभाव से उत्पन्न होने लगता है और सर्वत्र बाग़ खिले फूलो से भर जाता है। भूमि की गर्मी सर्दी के प्रभाव से ऐसी दशा स्वयमेव ही हो जाती है की स्वयं ही शंखपुष्पी आदि अनेक फूलवाली औषधीय निकल आती हैं।
ठीक ऐसे ही वसंत ऋतू में भूमि को यदि गर्भाशय मान ले तो कोई संशय नहीं होगा क्योंकि ऋतुओं के परिवर्तन का कारण जल गर्मी की कमीबेसी इसी प्रकार आदि सृष्टि के समय पर पृथ्वी अत्यंत गर्म होती है ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थ भी कहते हैं और हाल के वैज्ञानिक भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं –

एक अवस्था में पृथ्वी और द्यौ साथ थे :

इमौ लोको सह सन्तौ व्यैताम। जै० ब्रा० १।१४५

इमौ वै लोको सहास्ताम्। एत० ब्रा० ७।१०।१

शतपत ब्रा० (७।१।२२३) आदि अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ में श्लोक पाये जाते हैं जिनका
अर्थ है सूर्य और पृथ्वी पहले साथ ही साथ थे। बाद में पृथक हुए

इमौ वै सहास्ताम। ते वायु वर्यवात। तै० शा० ३।४।३

जब पृथ्वी सूर्य से अलग हुई तब बहुत गर्म थी इस हेतु उसमे मनुष्यादि प्रजा का उत्पन्न होना विज्ञानं सम्मत नहीं होता – इसलिए पृथ्वी का उचित तापमान बनाने हेतु वर्षा की गयी और उचित समय पर पृथ्वी और जल के संपर्क से मनुष्य आदि की उत्पत्ति से तीन चतुर्युगी पूर्व वृक्ष औषधियां आदि उत्पन्न हुई –

या औषिधी पूर्वा जाता देमयस्त्रियुग पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह शत धामानि सप्तच।।
(ऋग्वेद 10.97.1)

औषधियां मनुष्य से तीन चतुर्युगी पूर्व उत्पन्न होती हैं।

ये सिद्धांतभूत नियम है जो वेदो में इस विज्ञानं के सम्बन्ध में पाये जाते हैं।

सिद्धांतो को लेकर ब्राह्मण आदि ग्रंथो में विस्तार और क्रम आदि दिखलाया गया है।

तस्मादात्मन आकाश सम्भूत। आकाशाद्वायु। वायोरग्नि। अग्नेराप। अदभ्य पृथ्वी। पृथिव्या औषधय। औश्धिम्यो न्नम्। अन्नात्पुरुष।
तै० उ० 2.1

अर्थ : परमात्मा की निमित्तता से प्रकृति से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु। वायु से अग्नि और अग्नि से जल। जल से पृथ्वी और पृथ्वी से औषधीय। इनसे अन्न और अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ।

यह एक वैज्ञानिक क्रम है जो उपनिषद में वर्णित है।

तो पृथ्वी में आदि सृष्टि के मनुष्य आदि प्रजा उत्पन्न करने के लिए वसंत आदि ऋतू में गर्भ आदि का उचित तापमान जब आया तब ईश्वर ने "वीर्य" को गर्भ (पृथ्वी) में धारण करवाया।

यहाँ वीर्य उस सामग्री का नाम है जो गर्भ में भ्रूण बनाने में उपयोगी पदार्थ विद्या है – जैसे वीर्य में अनेक गुण (प्रॉपर्टीज) होती हैं – वैसे ही रज में होते हैं – और गर्भ में उचित तापमान होता है जिससे गर्भ में भ्रूण बनता है।

यदि हमें ४ लोगो का भोजन बनाना हो – तो नमक हल्दी मिर्च आदि मसाला – सामान्य ही उपयोग होगा – परन्तु यदि ज्यादा लोगो का खाना बनाना हो तो अवश्य ही ज्यादा हल्दी मिर्च आदि मसाला प्रयुक्त होगा – ठीक इसी प्रकार जब आदि सृष्टि के मनुष्य युवा अवस्था में उत्पन्न होते हैं – तब उत्तम और उचित वीर्य से उस अवस्था के मनुष्य उत्पन्न होते हैं – यदि विज्ञान रज-वीर्य आदि के गुण (प्रॉपर्टीज) ठीक प्रकार जांच लेवे तो विज्ञानिक स्वयं स्वतंत्र रूप से वीर्य का निर्माण कर सकते हैं मगर ऐसा होना अभी हाल के अनुसन्धानियो द्वारा संभव नहीं मगर विज्ञानं ने इतनी तरक्की तो कर ही ली है की "कृत्रिम गर्भ" को बना सके। आने वाले कुछ वर्षो में शायद ये तकनीक ठीक काम करने लगे –

http://en.wikipedia.org/wiki/Artificial_uterus

ठीक इसी प्रकार यदि रज और वीर्य आदि के गुण धर्म (प्रॉपर्टीज) भी ज्ञात कर लेवे तो स्वतंत्र वीर्य – विज्ञानिक स्वयं निर्माण कर सकते हैं। और उचित समय पर जब गर्भ (पृथ्वी) में मनुष्यादि देह में जीव का संयोग ईश्वर को करना होता है तब विद्युत अग्नि आदि से जीव का शरीर से संयोग होता है और जगत में मनुष्य आदि प्रकट होते हैं।

आपो ह यादवृहतीविशवमायन गर्भदयाना जनयतिरग्निम्। (ऋग्वेद म. १० सूक्त १२१ मन्त्र ७) कारण भूत जले गर्भ में अग्नि को धारण करती हुई विश्व को प्रकट करती हैं।

अब कुछ लोग सोचेंगे – ये युवा अवस्था में ही क्यों आदि सृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं ? तो मित्रो इसका बहुत ही सुन्दर और सरल जवाब ऋषिवर दयानंद ने दिया है –
ऋषि ने सत्यार्थ में इस सवाल का जवाब दिया है –

"आदि सृष्टि में मनुष्य युवावस्था में उत्पन्न होता है क्योंकि जो बालक उत्पन्न होता तो उसके पालन के लिए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में उत्पन्न करता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिए युवावस्था में ही आदि सृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

तनिक विचार किया जाए तो ये बात सिद्ध भी सही होती है और ऊपर के लेख में वैज्ञानिक और तार्किक रूप से यही सत्य सिद्धांत समझाने का प्रयास किया गया है =

किसी भी लेख में भूलचूक होना स्वाभाविक है – कृपया लेख को पढ़कर अपने सुझाव और परामर्श अवश्य देवे – यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो क्षमा करे

लौटो वेदो की और

नमस्ते

GRIHA PRAVESH BASED ON PARASKAR GRIHA SUTRA AND VEDAS

APRIL 28, 2014 1 COMMENT

Author: Subodh Kumar

Griha Pravesh (Entry to NEW HOME) Based on Paraskar Griha Sutra and Vedas.

पारस्कर गृह्सूत्र 3.4 के अनुसार

1. Announce entry in to the new HOME by entering through the decorated main door, carrying flower bouquets, gifts of fruits and sweets.
2. And carry in a bronze/Copper vessel mixed in water, milk, curd, honey, leaves of गूलर-Ficus Racemosa, पलाश टेसु – Butea Monosperma,कुशा Cyanodon Dactylon and Barley seeds. (Modern science has confirmed that all these ingredients are natural organic sanitizers and have fungicidal and bacticidal properties.)

While entering recite:

धर्मस्तूणा राजँ श्रीस्तूपमहोरात्रे द्वारफलके । इन्द्रस्य गृहा

वसुमन्तो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजाया पशुभिः सह ॥पागृ**3.4.18.1**

धर्म के आधार पर बने इस सुन्दर भवन में लक्ष्मी का निवास हो. ,दरवाज़े

खिड़कियों पर दिन रात सुरक्षा के लिए देवता उपस्थित रहें जिस से सारी धन

सम्पदा की सुरक्षा से मेरे आश्रित पुत्र पौत्र सुरक्षित रहें.

This house achieved by honest means should always ensure a prosperous living for the inmates. Gods may provide full protection and safety on all entrances –doors and windows to ensure wellbeing of all young children and dependants here.

यन्मे किञ्चि दस्त्युपहूतः सर्वगण्सखायसाधुसंवृतः ।

तां त्वा शाले ऽरिष्ट्वीरा गृहान्नः सन्तु सर्वत इति॥ पागृ **3.4.18.2**

हम प्रार्थना करते हैं कि हमारा यह भवन हमारे परिवार जनों को सदा रोग मुक्त

सुरक्षा प्रदान करे.

We also pray that this house may always be free from any infections that may cause ill health or disease to the inmates.

1. Arrange to sit down and perform jointly with all the family a PUJA and HAWAN (if it can be done).

For Hawan/ Puja consider the following for reciting.

घी की आहुती

1. ओ३म् वास्तोष्पदे प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।

यत्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा ॥ ऋग्वेद

7.54.1.पा गृ 3.4.7.1

मैं इस नये भवन में प्रवेश करता हूं। मेरा यह प्रवेश मंगलमय हो । हमारी रक्षा का भार तुम पर है। इस के लिए तुम आशीर्वाद दो कि मेरी देह, श्रेष्ठ, नीरोगी और स्वस्थ रहे। जिस किसी वस्तु की हमें अभिलाषा हो वह यथाशीघ्र प्राप्त हों । यह निवास हम सब के लिए कल्याणकारी हो.

I occupy this house to bring me good luck. This house may provide to me with healthy ambience to ensure good health. All my needs for this house may get fulfilled at appropriate times. .

2. ओ३म् वास्तोष्पदे प्रतरणोन एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरन्दो ।

अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ।

शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा ।। ऋग्वेद 7.54.2,पागृ 3.4.7.2

हमारी चल सम्पत्ति की रक्षा करो । दुर्घटनाओं से सुरक्षा प्रदान करो । मित्र भाव से हमारे स्वास्थ्य और सम्पत्ति की वृद्धि करो । हम चिर तरुण बने रहें । इस घर से हम प्रेम की डोर से बंधे रहें ।

This house should provide complete safety to all fixtures, furnishings, fittings and movable property safety against thefts and accidents to ensure for us a relaxed carefree living, to make us feel always young and cheerful and to be attached to this place.

3 . ओ३म् वास्तोष्पदे शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।

पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ऋग्वेद7.54.3,

पागृ3.4.7..3

अति रमणीय और सुखदायक उत्तम वाणी, सहवास , और सभा पड़ोस से सदा

सुख सम्बंध बनाए रखें । हमारे प्राप्त धन और भविष्य में हमारी आय की रक्षा

करो । इस प्रकार हमारे कल्याण के सब साधनों की रक्षा करो ।

This house should ensure for us a very pleasant happy homely family and sweet atmosphere. We should be relaxed and on friendly terms with all our neighbors, that ensures complete safety and protection for our entire wellbeing and living here.

1. ओ३म् अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् ।

सखा सुशेव एधि नः स्वाहेति ॥ ऋग्वेद 7.55.1 पागृ3.4.7.4

इस भवन में हमें रोगादि सुक्ष्माणुओ से सुरक्षा प्राप्त हो। सुंदर स्वास्थ्य दायक

वातावरण प्रदान करो ।

This house may always have disease free, healthy ambience of positive energy.

स्थालीपाक से आहुतियां खीर मिठाइ से हवन

(These are addressed to all different Devtas that have a role in our wellbeing.)

1. ओ३म् अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वाँश्च देवानुपह्वये ।सरस्वतीञ्च वाजीञ्चवास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ पागृ3.4.8.1

This offering of food in to fire is to symbolize my wish that food in this house may promote the wisdom to lead an active life in welfare of the entire community.

1. ओ३म् सर्प देवजनान्त्सर्वान् हिमवन्तं सुदर्शनम् । वसूँश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह । एतान्त्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ पागृ 3.4.8.2

This offering of food in to fire is to symbolize my wish that food in this house is to welcome the presence of health promoting, and disease (pollutants)   removing agents in this house.

1. ओ३म् पूवह्णमपराहणं चोभे मध्यन्दिना सह । प्रदोष्मर्धरात्रं चव्युष्टां देवीं महापथाम् । एतांत्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ पागृ 3.4.8.3

This offering of food in to fire is to symbolize my wish that food in this house that the availability of Nature's gift to ensure the living of our physical body along with our mental faculties to remain fully awake even during our sleep in the nocturnal 24 hours cycle.

1. ओ३म् कर्तारञ्च विकर्तारं विष्वकर्माणमोषधींश्च वनस्पतीन् । प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ पागृ 3.4.8.4

This offering of food in to fire is to symbolize my wish that our life style in this house should ensure that the entire environment – ecosystem provides us complete welfare.

1. ओ३म् धातारं विधातारं निधीनांचपति सह । प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ पागृ 3.4.8.5

This offering of food in to fire is to symbolize my wish that Nature is our guardian angel to shower all its bounties for us to live happily and with peace in this house.

1. ओ३म् स्योनं शिवमिदं वास्तु दत्तंव्वब्रह्मप्रजापती। सर्वाश्च देवताश्च स्वाहा ॥पागृ 3.4.8.6

This offering of food in to fire is to symbolize my wish that my guardian angels ensure that I progress in life to reach highest levels of fame, prestige and prosperity.

After the hawan/Puja   visit the entire house starting from the main entrance anoint all the walls on the four directions East-West- South-North with the sanitizing water mixture brought in the bronze/copper vessel , while reciting the following:

On the East side; श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेतामिति । पागृ 3.4.10

तुम्हारा यश (समाज में सम्मान) और धन सामर्थ्य तुम्हारी पूर्व दिशा की रक्षा करें

Your reputation and financial strength may provide protection from Eastern side.

On the South side; यज्ञश्च त्वा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेतामिति । पागृ 3.4.11

तुम्हारे समाजिक कार्य और दान तुम्हारी तुम्हारी दक्षिण दिशा से रक्षा करें

Your social work and charities may provide you protection from South side.

On the West side; अन्नञ्च त्वा ब्राह्मणाश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेतामिति । पागृ 3.4.12

तुम्हारा अन्न और सुमति तुम्हारी पश्चिम दिशा से रक्षा करें

The wisdom in your living and your food may provide protection from West side.

On the North side; ऊर्क्च त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेतामिति । पागृ 3.4.13

तुम्हारा तेज और सत्याचरण तुम्हारी उत्तर दिशा से रक्षा करें

Your image in community as supporter of just causes may provide protection from North side.

(Perhaps too much should not be read in mention of specific directions East West South North. Symbolically it is only reminder as to the type of your life style that provides protection from all the four sides)

After these ceremonies and a community meal, and thanking every one, while departing the elderly persons may bless the house holder by reciting following;

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।

सर्व भवन्तोऽत्राऽऽनन्दिताः सदा भूयासु ॥ अथर्व 7.60.2

तुम्हारा जीवन सुख समृद्धि दूध से पूर्ण हो. (दूधो नहाओ पूतो फलो)

Departing guests wish the householder a living full of prosperity and love.

ओ३म् सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।

ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ऋग्वेद 7.55.5

इस घर के माता पिता, घर की रक्षा करने वाले बुज़ुर्ग , सब सम्बन्धी अड़ोस पड़ोस के जन सुख चैन से रहें।

Departing guests also wish the householder a carefree happy living in the entire neighborhood.

NO VIOLENCE IN YAJNAS

MARCH 22, 2014 LEAVE A COMMENT

NO VIOLENCE IN YAJNAS

Writer : Pt Dharmadev Vidyamartand

Importance of Yajnas has been stressed in several places in the Vedas. Yajna is even considered a way to Worship and realise God :-

(When truthful and enlightened persons worship God through Yajnas, they attain salvation which is freedom from sorrow.)

The Word "यज्ञ" has its origin in the root ("Yaj") "यज" which means :

(1) Worship of God by enlightened persons (Devapuja)

(2) Unity (Sangatikarana)

(3) Charity (Dana)

Thus, "Yajna" epitomises all our duties towards God, to our superiors, equals and inferiors. This is the reason why Yajna is considered the noblest of all human acts. How a man, who does not perform Yajna, goes on degrading himself, is mentioned in Rigveda (l0.94.6)-and Atharvaveda (20.94.6) :

(Those who do not ride the boat of Yajna, become abominable and impure and their character keeps on deteriorating.)

It is matter of great shame that such yajnas, which are the means of worshipping God and attaining salvation, have been misinterpreted and misconceived by our own, medieval masters, no less by western scholars and, their modern followers who assert in their commentaries of the vedas that there are references here to sacrifice of sheep, goats, horses, buffaloes in the course of such yajnas.

For instance, one of the contributors to the Vedic Age, writes while discussing Apri Hymns,

"Scarcely less debased than the *Dana Stutís* are the Apri hymns, manufactured artificially for employment in animal sacrifices …. . . There is no reason to doubt that these hymns were actually used at the animal sacrifices as the tradition maintains"

Another contributor referring to the Kausika Sutra (XIII,I-6) says that it prescribes a magic rite in which portions of the bodies of some animals and human beings, such as of a lion and a tiger, a ksatriya and a Brahmacharin are to be eaten to acquire certain power ; not totemism but same sacramental communion, is hinted at."

While detailed discussion on this issue will form a huge treatise, it will suffice here to suggest a few points to remove such misconceived notions about the yajnas.

To begin with, we must stress that the word 'अध्वर' (*Adhvara*) occurs as a synonym or as an adjective for "यज्ञ " (Yajna) at several places in all the four Vedas.

The author of the Nirukta, a book on philology, Yaskaracharya, gives the etymology of the word "Adhvara " thus :- **mantra**

("Adhvara" is the name of Yajna which means free from any violence).

Given below are some of the mantras from all the four Vedas in which the word "Adhvara" has been used in relation to Yajnas :-

RIGVEDA :-

(1)

-Rig. 1.1.4

(Thou, O Lord, art present only in the Yajnas, which are free from violence. Only such Yajnas are acceptable to the truthful learned persons).

(2)

-Rig. 1.1.8

(In this mantra also God's presence only in violence-free actions is stressed)

(3)

-Rig. 1.14.21

(Using the word "Adhvara" for Yajna, the Wise have been requested to keep the Yajna "violence-free".)

(4)

-Rig. 1.128.4

(It is stated in this mantra that God and the wise enjoin upon people to perform Yajnas free from violence.,)

(5)

-Rig. 1.19.1

(The blessings of God and the priests have been invoked in this mantra for the success of a Yajna free from violence, always.)

YAJURVEDA :-

Yajurveda is also full of mantras where not only the adjective "Adhvara" has been used for Yajnas, but also we are taught against violence of all kind including the violence against animals. For instance, this mantra indirectly rules out all violence in our dealings with the outside world:-

(Oh God, the Dispeller of darkness, may everyone look upon me with friendly eyes, may I look upon everyone (not human beings alone) with love and friendship, may we look upon each other with love and friendship.)

Describing Yajna as the noblest of acts in Yajurveda (101), people have been asked to protect the animals (पशुन्पाही) In Yajurveda (6-1 1) also there is a teaching for the married couple- *pashun paai*; *pasun trayetham*.

In Yajurveda 14.8 it is said ….. द्विपादव चतुष्पात पाहि l (O man thou protect bipeds and quadrupeds)

‘ Likewise in more than 43 mantras in this Veda, the word *Adhvara* has been used either as an adjective of *yajna* or its synonym.

SAMAVEDA:

There are also many references to Yajna as "Adhvara" in Samaveda.

Note for instances the followings :-

(In this mantra scholars have been invited to attend the *Yajna* which is ‘चारु'(beautifi-because it is *adhvara* (non-violent).

(Using the word *Agní*(अग्नि) for God, it is said that He encourages non-violent Yajnas "adhvaranam".

In this mantra also describing *Yajna* as "*adhvara*" people are enjoined to Worship God.

There is clear instruction against violence, particularly animal sacrifice, in the following mantra :-

It is prayed in this mantra: May we not indulge in any violent act, nor others tempt us to do so.

ATHARVAVEDA :-

Likewise in Atharvaveda, there are many mantras in which the word "adhvara" has been used for Yajnas. For instance :-

In fact the misconception about the injunction of animal sacrifice in the Vedas takes its root from the misinterpretation of the word medha (मेधा); a synonym of यज्ञ which is used as a

suffix to many words such as अजमेध(Ajmedha),गोमेध (Gomedha) , पुरूषमेध (Purushmedha), अश्वमेध (Aswamedha) etc,

These words, however, do not stand for sacrifices of horses, cows, human beings etc as will be shown in the following pages.

The Sanskrit root of the word मेध*Medha* is मेधृमMedhra which means :

(1) to sharpen the intellectual faculty

(2) to promote unity or love among people

(3) or to practice violence.

There is no reason why it should be taken only in the last sense, particularly in relation to Yajnas, in which there is strong emphasis on non-violence in all the Vedas.

It may be noted here that Purush Medha (पुरूषमेध), Purush Yajna (पुरूषमेध) and nriyajna (नृयज्ञ) are synonyms.

In Manusmriti, नृयज्ञ nriyajna has been explained as hospitality नृयज्ञोSतिथिपूजनम (Manu 3-70).

Taking the second meaning of the root Medhra. (मेधृ)the word नृमेध (nrimedha) would mean uniting people for noble deeds and inspiring love and unity among them.

Nriyajna (नृयज्ञ), Purush medha (पुरूषमेध), are also Rishis of the following mantra from the Samveda :-

That the meaning of such words as अजमेध, and अश्वमेध are different from what they are understood by western scholars is also clear from their references in Brahmanas and Mahabharata etc.

For instance in Shatpath it is stated that the word *Asva* अश्व: also stands for the seminal energy :

"राष्ट्रं वा अश्वमेध:| वीर्यं वा अश्व||"

Increasing the energy or power of the citizens of the nation or proper administration of the state)

अज is also the name of a kind of paddy which at one time as a rule was poured into the Yajnas.

For instance, we read in Mahabharata (Santiparva):-

When in ancient literature people are asked to offer *Aja* (अज) in the Yajnas, it does not mean they should sactifice a goat, but pour seeds of lentil of the same name.

The similar sentiment has been expressed by Vishnu Sharma in his *Panchatantra* (Kakoliyam):

Those who perform animal sacrifice for Yajnas are fools. They do not understand the proper meaning of the Vedas. ln "अजैर्यज्ञेशुयष्टव्यम" in the Vedas, the word *Aja* should be understood to mean " Vrthi", a particular variety of old paddy and not sacrifice of goats.

In "स्याद्वादमंजरी ", a famous book in Jain literature, the word अज been taken to mean only paddy and never a goat.

(While the ignorant misinterpret the word अज as a goat, the learned understand by it only different varieties of paddy.)

lt has been clearly stated at several places in the Mahabharata that there is no mention in the Vedas of meat eating drinking, or animal sacrifices. The Yajnas marred by violence are contrary to the spirit of the Vedas and against the human laws of Manu. The yajnas with animal sacrifice were propagated by rogues, atheists, grabbers, usurpurs. Such Yajnas, in fact, are sinful and against religion.

Given below are two slokas from Mahabharata (Shantiparva) which will drive home this point :-

(It is stated in these verses that persons, who have spoken of animal sacrifice in Yajnas are stupid, atheists and are devoid of all knowledge about the injunctions of the shastras.)

Manu, the law giver, had stressed the importance of non- violence in all actions. Those who indulge in violence, do so on their own accord. Their actions have no sanction of Manu. Nor do their actions have the approval of the Vedas. All the religions preach non-violence and give it the highest priority in life. Only wicked persons started the tradition of meat eating, drinking and using other intoxicants. They were motivated by egoism, attachment and greed in starting this tradition. The Brahmans see the Omnipresent God in the Yajnas and offer oblations of milk or milk products in the sacrificial fire.

It is clear from the above that animal sacrifice in the Yajnas was started only by the wicked. And since it is not in harmony with the spirit of the vedas, any reference to it in *Sravsutras*, Grthyaasutras, *Brahmanas*, *Smrítis* or other religious books should be taken as an interpolation.

That the import of such material in the original ancient literature was not a new phenomenon has been stated by the famous dualist Acharya Madhvacharya in the following words in Mahabharata :

(Some wicked ones import foreign material into original books, some hide a few portions, others alter due to the laziness or do it deliberately. Thus even when these ancient books are not destroyed, they are distorted beyond measure)

The ancient Rishis were totally against animal sacrifice in the Yajnas. For instance, it is stated in Mahabharata (Aswamedha parva) that:

(When the Rishis saw the poor animals (brought for sacrifice in the Yajnas,) they were deeply touched, “There is no mention of animal sacrifice anywhere. This will only destroy your religion. You should perform Yajnas in accordance with the instruction, given in the Vedas for greater benefit.)”, they told the priest.

No wonder Risis, who have been described in Nirukta as “those who realise the real spirit of Dharma”, considered animal sacrifice contrary to the spirit of the Vedas.

At another place in the Shantiparava in Mahabharata, it is said :-

Certainly animal sacrifice is not sanctioned by the Vedas. The Yajna is always non-violent and should be performed that way. If one goes to heaven by killing animals or shedding their blood, what is then the way to hell?

ASVAMEDHA YAJ NAS AND NON-VIOLENCE

lt is generally held by Western Scholars and their zealous followers that horses were sacrificed in *Asvamedha Yajna*.

But the description of such a Yajna performed by king Vasu as found in the Mahabharata, does not bear out testemony to this abominable practice.

तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः |

(lt is stated in these verses that the Yajna was officiated by great sages and saints including three sons of the Prajapati and Kapila, Katha, Titeri and Kanva etc. This Yajna was very pious and sacred and no animal was sacrificed in it a all. The priests of this Yajna, who included authors of the Katha Samhita, Taittiriya Samhita, and Kanva Samhita, performed it in the non-violent way.

There seems to be some reference to animal sacrifice in “Taitteriya Samhita” which were added or interpolated to it only later.

EXHIBITION OF ANIMALS IN THE YAJ NAS

The root Medhra (मेधृ) from which the Sanskrit word Medha (मेध)has been made also means Sangalnana(संगमन) This is borne out by the description of *Asvamedh Yajna* recorded in Mahabharata

(Aswamedha parva). For instance, in the following description, there is clear indication of an exhibition of different varieties of birds and animals being organised at the time of the Asvamedha :-

The misinterpretation of the words *Alambha*(आल्मभ), Sanjapana (संज्ञपन) and *Avadana* (अवदान) was also responsible for creating confusion relating to the issue of animal sacrifiee in the Yajnas.

The following mantra from Yajurveda, is often quoted to suggest the evidence of the animal sacrifice :

The word alambha (आलंभ) in this mantra has been wrongly interpreted to mean sacrifice here of elephants for the Welfare of the Prajapati (प्रजापति) ; in fact, alambhana does not mean "to kill" but "to acquire".

(The word Alambha आलंभ has its root in आंगपूर्वक लाभ which means to acquire, to embrace etc.)

For instance, see the use of this Word in the second sense in the following mantra :

(Here it is prohibited for the Brahmacharins to look or to embrace women (स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भम).

In the second chapter ofपारस्कर गृह्सुत्र word occurs in this sense where the Acharya touching the heart of a Brahmacharin says :

(The bridegroom should lift his hand above the right shoulder of the bride and touch her heart.)

Here the commentators like Jai Rama and Hari Rama have interpreted the Word आलभते as सप्रूशति (touches)

ln the following injunction again from Paraskara Grihsutra the word *alabhate* has been used for "touching" :

ln Yajurveda there is a reference to acquire particular birds for specialized study and not for any wayward killing :

THE CORRECT MEANING OF SANGYAPANA(संज्ञापन)

The word संज्ञापन (Sanjyapanam) used at many places in Brahmanas and Shraut Sutras is generally taken to mean “killing instantaneously”. But this is grossly incorrect and only betrays the ignorance leading to its misinterpretation.

lt is clear from the use of this word in the following mantra that it means “to inculcate knowledge” or “to unite” :-

(The mantra means that your bodies should be united, you should take physical exercises unitedly, your minds and your souls should be united. May God, the Repository of Knowledge, always keep you united etc.)

In Satpath also there is a passage where the word has been used in the second sense of making one realise or making it known to others :-

(In this mantra, the power of the tongue, to make the other one know what is in the mind, is stressed.)

MISINTERPRETATION OF THE WORD ASWAMEDHA

It is assened in the Vedic Age that “Animal sacrifices” are indicated in the *Apri Suktas* and the horse sacrifice (*Asva Medha*) was undoubtedly performed”.

But the fact is that there is not the slightest reference to the animal sacrifices in these hymns. This is only the result of their ignorance and illusion.

The word अश्वमेध during the Vedic period was used in the sense of “administration of the state” or “increasing the strength of the state” as clear from ‘राष्ट्रं वे अश्वमेधः (Satpath 13- 1-6) or वीर्यं वा अश्वः But there is no evidence whatsoever of the sacrifice of horses in the Yajnas performed during that period.

In the following mantra which used to be recited at the time of the Asvamedha Yajna, there is no reference to animal sacrifice at all :

(It is mentioned in these mantras that the horses should be properly trained and full knowledge acquired about their behavior, food and drinking habits etc. People have also been asked in these mantras to look after the horses property.)

In all the mantras of this hymn, there are similar instructions. In the end also, prayers are offered for giving us cows, horses, strong progeny and wealth :-

No doubt some of the Indian scholars like Sayanancharya, Uvvate and Mahidhar and foreign scholars following them like Prof Max Muller, Griffith and Wilson, have misinterpreted some of the Vedic mantras occurring in this hymn to suggest that there is a mention rather an injunction of animal sacrifice in the Vedas. While in reality, it is only the figment of their own mind with no truth in it at all. There is not only complete absence of any instruction for animal sacrifice in the Vedas, but there is clear provision for punishment of those who indulge in this practice even negligence, towards these dumb creatures.

Two of the mantras have been thoroughly misunderstood in this regard, the first one being as follows :

Sayanacharya, along with his Indian and foreign follower has given a very absurd meaning of this mantra. According to him the mantra means as follows :-

“Those who see the boiled flesh of horses and praise the smell of their bodies, let the labour of such persons be ours”.

According to Swami Dayanand, however, the mantra means :

“Drive away from us those who beg the flesh or horses or consider them worthy of sacrifice.”

The word Vajinam(वाजिनम) also means a “brave person”. Thus the mantra can also mean that the brave person, who is also well- versed in the art of cooking protects his country and brings wealth to it.

The second mantra, which is ofien misunderstood by scholars, is given below :

Saynacharya, and Mahidhar have played havoc while interpreting this mantra in the following way:

“Let not an iota of thy flesh may fall to the ground, O horse, may the gods, desirous of it, receive it.”

Compare it with the rendering of this mantra with the one given by Dayanand in the following words :

“O Ye men, you should get the affected limbs cured by doctors because the medicine given by them is beneficial for health.”

Killing of animals has been prohibited in many mantras in the Vedas. For instance, take the following :

(Don’t kill the horses.)

In Yajurveda’s 25.43 also, the words, ‘मा स्वाधितिस्तन्त्र आतिष्ठिपत् ‘ clearly instruct against killing of animals :

Some orthodox scholars went to the extent of imagining that those animals, which are sacrificed in fire, go to heaven. The misconceptions in this regard seemed to have sprung from the following mantra from the Rigveda (1 .162.21) (which also occurs in Yajurveda (25.44) :

Commenting on this Sayanachalya writes :

(Those shall not die O horse, because offered to gods, thou must achieve the divinity and thus share their immortality.)

The correct meaning of this mantra, however, is “Just as a man travels comfortably in a chariot moved by fire, water and air, so the soul, which is fully enlightened through self-knowledge and free from the fear of death or violence, attains the divine bliss)”

Misinterpretation of such Vedic mantras was usually motivated by self-interest greed and ignorance.

Now we will critically examine some of the misconceptions about the sacrifice of cows and beef-eating’s.

Clayton, in his book, “*The Rigveda and Vedic Religion*” writes:

“At one sacrifice, probably a very unusual sacrifice, performed once in five years, called the “Pancha Sharadiya Sava, seventeen young cows were offered. Bullocks, buffaloes and deer were also sacrificed, sometime in large numbers. The White Yajurveda mentions 327 domestic animals, including oxen, milch cows, that are to be offered along with the horse at the greater Horse- Sacrifice”

The basis of Clyton’s conclusion seems to be “Rajendra Pal’s book entitled “*Indo Aryans ate meat and drank wine*”.

Most of the foreign writers have upheld this view and authors of the Vedic Age have almost copied it.

While describing the customs and traditions of the marriage ceremonies during the Vedic Age, they have written:

“The guests are entertained with the flesh of cows killed on the occasion (of marriage).”

This statement made by them is highly erroneous because cows have been described in the Vedas at several places as ‘Aghnya’ (अघ्नया) and Aditi(अदिति) which means “not to be killed under any circumstances” Some of the mantras in which the word Aghnya (अघ्नया) has been used for the cow are as follows :

(hi this mantra cows, addressed as Aghnya अघ्न्या have been enjoined to keep themselves healthy by use of pure water and green grass so that we, who drink their milk, may be endowed with Dharma, knowledge and wealth"

(In this mantra also, where again the word अघ्न्या has been used for cows, it is stated that this animal is responsible for our health and prosperity.)

(In this mantra, the milk of the cow has been compared with the fight of God.)

(Describing the devotee, who is a man of action, it is stated that he gets up before the dawn, entertains noble thoughts and drinks the milk of the cow which should never be killed.)

(In this mantra also the adjective for Dhenunaam (धेनूनाम) is Aghnyanam अघ्न्यानाम [which is very significant)

There is also clear instruction in Rigveda. 101.15 against the slaughter of cow which has been described as a mother :-

(Don"t kill the cow which is like the mother, the daughter, and the sister to the learned Brahmacharins.)

The word Aghnya अघ्न्या has also been used for the cow in the Atharvaveda :-

(I remove all your jealousies and prejudices and unite your hearts. May you love each other as a cow loves her new born calf.)

The following mantra from the Atharvaveda also extols the qualities for which the cow is universally loved and revered :

(In this mantra, the milk of the cow, for whom again the adjective Aghnya(अघ्न्या) has been used, is considered of special benefit to the children.)

(In this mantra use of the milk of the cow, has been suggested for the learned persons endowed with great intellects.)

(In this mantra, the Veda has gone to the extent of suggesting the use of cow's milk for removal of sins :

The penalty of death has been suggested for those who kill the cows :

Also the similar punishment is suggested for even stealing her milk :

In accordance with the spirit of these mantras, Manu, the law giver, has said :

The Vedic Age tries to reconcile the epithet "Aghnya" used for cows with the eating of bullock's beef saying that (I) the flesh of the ox, rather than that of the cow, was eaten. (ii) the flesh of the cow (if at all) was eaten on special occasions like a sacrifice or at a reception of guests. (m) only barren cows (वशाः) were sacrificed.

But this explanation given by them is unacceptable. We must make it clear that the epithet aghnya (अघ्न्या) repeatedly used for cows is also used for the oxen.

For instance Aghnya has been used for the oxen in the following mantras :

(While commenting on this Sayanacharya has written in his Kanvasamhita (chapter-13) :

(In this mantra an ox has been described as "not to be killed" (अघ्न्यः).

The suggestion that the flesh of the cow was eaten on special occasions is also ridiculous.

We have earlier shown that in the entire Vedic literature the word "Adhvara" (non-violent) has been used for the Yajnas. To imagine that meat eating was pennitted on such occasions is beyond our apprehension.

The Brahmanas have clearly stated that meat eating is one of the things which renders the Y ajnas ineffective and, therefore, should be avoided at least during their performance :

(Eat not the meat nor thou indulge in sexual gratification during the performance of the Yajna.)

Similar injunction has been given in **Tandaya Maha Brahmana** :

(A person performing Yajna should neither eat meat nor indulge in sexual intercouse. lf he does, Yajna becomes fruitless and yields no results.)

lt has also been stated in Vedic Age that the cows were killed and their flesh served to please the guests. The following mantra is quoted to prove this practice :

It is also stated in the Vedic Age that the beef was served to guests on the occasion of marriages.

Late K.L. Munshi in his book “Lopamudra” says that guests अतिथिग्व (atithigva) was considered a respectable term which stood for a person who served beef to his guests. It is important to remove the misconception about such words as अतिथिग्व (atithigva) and अतिथिनिर्गाः (atithi-nirga) for गाः in Rigveda

(10.86.3) has been explained by commentators like Sayanacharya as सततं गच्छन्तीः (the root: अत-सातत्य) i.e., ever on the move.

Even the word गाः has been defined as water (साधुनयनादिगुणयुक्ताः अपः). Even if we take the word अतिथि instead of (अतिथिनी) it means the cows which are brought near to the guests (अतिथिभ्यो नीयन्ते)and are finally offered to them. There is no reference to their killing which would be in direct violation of the

spirit of the Vedas in which the words Agnya अघ्न्या, and Aditi अदिति have been used. The word अतिथिग्न Atithi-gna does not mean a person who offers beef to the guests as wrongly misunderstood by K.L. Munshi. It stands for a person who goes close to the guests for their service as pointed by Saynacharya and Maharshi Dayanand. Even the famous Sanskrit English Dictionary by Monior Williams gives the meaning of this word अतिथिग्न (atithigna) as: “To whom guests should go.”

Bloomfield has also defined this word as “presenting cows to the guests”

It is pointed by some authors that the word “गोघ्न (Goghna) is used for guests in accordance with the aphorism of Astadhyayi “दाशगोघ्नौ सप्रदाने”. Actually, the word ` गोघ्न (goghna) is nowhere used in the Vedas for guests. When it is used as in the following mantra from Rigveda, it is used in the sense of “keep off ”:

(The killer of the cow is a mean fellow; keep away from him.)

Even in ancient literature, when this word occurs in regard to a guest, it means “A person to whom a cow is offered” and “for whom sweet words are spoken.”

The word गोघ्न’goghna’ is derived from the हन्(Han) which means ‘हिंसा (violence) and गति (movement). The word Stands for ज्ञान (knowledge) `गमन (movement) and (acceptance). Thus goghna गोघ्न is one who is requested to accept the cow. In Atharvaveda, husband is given the instruction :-

(Strengthing your body with the semen, O husband, go to your Wife.)

In this Saynacharya and other Vedic commentators have interpreted the word जा as गच्छ because no sane person can take it to mean to kill.

In Shatpath (1.4.1.2.1) it is stated :-

In this also, the performer of the Yajnas is stated to be desirous of meeting or accepting God and not killing Him.

Therefore Sayanacharya has rightly explained the word “जिघान्सति’ ‘ as ‘प्राप्नुमिच्छति ” _ Many such examples can be multiplied.

Therefore, the word गोघ्न means गौः हन्यते प्राप्यते यस्मै’. (who is made to accept the cow.)

It is also wrong to say that there is a provision for the killing of the barren cows vasa(वशाः) in the Vedas.

The word उक्षा and वशा in the following mantra, in particular, stand for oxen and barren cows :-

Actually उक्षा stands for the medicinal herb which is also known as सोम, or “सूर्य`ऋषमम etc.

Famous Vedic commentator Sayanacharya has at several places used the word उक्षा to denote

सोम. For instance while commenting on Rigveda’s he writes :

Monior Williams has given the similar meaning in his Sanskrit- English Dictionary :-

Uksa, name of Soma (as sprinkling or scattering small drops) name of the Maruts-of the sun and Agni-one of eight medicaments Risbhak.” Some scholars hold the view that the word ETSTT (vasa) in the Vedas stands for the barren cow who was sacrifised in the Yajnas. lt is a very erroneous and misleading statement. Actually this word, used in wider context, means the controlling power of God, the controlling power of the soul which holds under its sway the mind, the intellect and the senses. There are many other meanings of this word, but surely it cannot be interpreted as “barren cows`. We thoroughly studies the hymn where this word occurs but nowhere did we find anything to support the above contention, It is, therefore, quite ridiculous to hold the view that in Atharvaveda 10/10, there is

a reference to the sacrifice of the barren cows. Take for instance the following mantra from this hymn :

The word सहस्त्रधारां cannot be used in regard to a barren cow or any cow, for that matter.

The word apparently applies to the controlling power of God about whom, it is said in the Atharvaveda (10.190) :

वशा has been used here in the following mantra from the Atharvaveda as the "law of God" or "the controlling power" :

Besides the controlling power of God, the word also stands for earth or a piece of land as in :

In both the hymns (10.10.2 and 10.10.30) of Athaiyaverda, there is reference to giving or taking of "वशा" :

This word also means a good housewife who keeps her children well under control:-

Though the Word has been thus used in different contexts, its principal usage is in medicine. lt is also called "भेदा".

The benefits of taking this medicament have been described thus in 'गुणनिघंटु" :

(It means that Meda is useful for cold, bite, heat, pain, cough etc.)

In Sanskrit-English Dictionary by Monior Williams also the words like एकड, वशा, अष्टपदिका, भेद been used for herbs or drugs :-

वशा-Premna Spinosa and Lorgibolia

अष्टपादिका-The plant Vallaiis Dichotoman Wall.

भेद:-A species of Medicinal plant.

Thus we have seen that it is incongrous and ridiculous to see in Atharvaveda hymns any reference to the barren cows and their sacrifice in the fire. About the word Go-megha गोमेघ it may be said that the word गौ has many meanings. When it is used in the context of speech गो मेघ will mean application of mind with speech, i.e. uttering words with great discretion or using words with accuracy in accordance with the rules of the grammar etc.)

In one of the passages Vedic Age wrongly assumes that there is an instruction to the couple to eat rice mixed with meat or the meat of oxen if they desired the birth of a child well-versed in the scriptures. As shown earlier, the word has been defined in the Sanskrit English Dictionary by Apte and Monior Williams, both as सोम and ऋषभक as the Tishabha. Thus the couple here have been instructed to take medicaments like सोम and ऋषभक and not meat of the oxen etc. as misunderstood.

In सुश्रुत (Chapter two) meat has been totally prohibited for a pregnant woman. It is even believed that its consumption may lead to abortion :

When meat has been thus prohibited for a pregnant woman, it appears to be highly improbable that there could be any such instruction as supposedly given to the couple.

There is also a reference in the Vedas to consumption of क्षीरौदन,दध्योदन,उदौदन etc for the pregnant woman. Therefore the view expressed by some scholars that an instruction for the couple to take rice mixed with a particular variety of pulse known as UN, seems quite in harmony with the spirit of the Vedas.

There is also a suggestion for taking this particular variety of pulse for women in the following passage from शुश्रुत:

(Here husband has been advised to take ghee and rice with a glass of milk and the wife to take the above mentioned variety of ‘माष (pulse) (before going to bed.)

At another place it is written :-

For healthy child the husband should take ghee with milk and the wife oil and माष (a variety of pulse)

lt is clear from the above that the correct reading in the text is `मांषौदनम Some self-interested persons wrongly misspelt it as and it became popular that way gradually.

However, if one insists on its correct reading as ` मांषौदनम may be mentioned that, according to the derivation of the word given in Nirukat, it means anything which one likes to take with relish and taste :

Thus it will be seen that any milk preparation like “kheer”, “rabaree` etc. will also fall in the category of the word’मांस.

In Charak Samhita, a standard book of Aurvedic medicines, the pith of a mango has been described as HTH and its stone as अस्थि.

The soft eatable portion of date has been named at some places in this ancient book as खर्जूरमांस Therefore it is erroneous to interpret the word मांस as “meat” wherever it occurs because of its wider usage as shown above. ‘

In Shatpat Brahmana the word ‘मांस orपरमान्न for instance, has been used for milk and rice preparation called ‘खीर.

Taitteriya Samhita indicates wider usage of the word मांस to cover curd, honey and com etc. (see 232.8)

In Taitteriya Samhita मांस has been used even for गुग्गुलु(which has been prescribed in the Vedas for killing germs of such fatal diseases as tuberculois.

In the mantra given below, the word `मांस should be taken as “milk” and not meat :-

In this mantra, it is stated the couple should not take cow’s milk and delicious things like खीर until and the unless venerable guest has been served first.

A reputed scholar of Sanskrit Sampurand has said in his Commentary on Rigveda’s Purush Sukta that Yajna is not complete without a sacrifice but this sacrifice is to be not of animals but animal passions like falsehood, greed, sex ego, attachment etc. We full agree with him.